

आरोग्य शिक्षा सम्बन्धी पुस्तकें—सांतांरिक विज्ञान के ज्ञान के बिना आज हम लोग रोगी और दुखी हो रहे हैं। आहार विहार, रस सहन आदि इसके काम में भ्रमण वगैरे ऐसी गैरगार भूलें हो रही हैं। निरोगता की पालक है। इस संबंध में सुखम-साहित्य प्रकाशन कारकें जनता की सेवा करना कार्यालय का एक काम होगा।

बालोपयोगी पुस्तकें—बालक ही समाज के स्वर्ण हैं और बालक-वय ही जीवन-मुधार के संस्कार चलाने का भेद समय है। यदि इस अवस्था में अच्छे संस्कार पद ज्यों तो उन्नति और मुधार में कोई विघटन नहीं। इस कार्यालय की ओर से बालोपयोगी गद्य, पद्य-गीत, कथा आदि की सुन्दर मनोरंजक पुस्तकें प्रकाशन की जाएंगी।

नारी शिक्षा की पुस्तकें—नारीशिक्षा के बिना समाज की उन्नति असम्भव है। भारतवर्ष में जब तक नारी समाज अभिक्षित और अल्प-अक्षर रहें जब तक मुधार के सभी उपाय माय निरर्थक ही समझिए। कार्यालय की ओर से इस ओर साहित्य प्रकाशन आदि उपायों द्वारा प्रयत्न किया जाएगा।

समाज-मुधार मन्त्रों की पुस्तकें—को विचार आदि सामाजिक नीति-विचारों में युक्त गये हैं उन्हें दूर किए बिना भी मुधार नहीं हो सकता। ऐसा साहित्य भी यहाँ से प्रकाशन किया जाएगा जो इन विचारों को दूर बाध में सहायक हो।

नैतिक की पुस्तकें—नैतिक ही धर्म की नींव है। आज नैतिक जीवन माना मरणात् हो रहा है। इसीसे इस प्रकार के मानव जीवन में नैतिक, सामाजिक व धार्मिक दुष्प्रभाव उत्पन्न हो रहे हैं। जब तक आज का मुधार जायेगा जब तक दुष्प्रभाव दूर हो जायेंगे। समाज-नैतिक पुस्तकें प्रकाशन होना भी बहुत आवश्यक है। यह कार्यालय ऐसा साहित्य भी प्रकाशन करेगा।

तन्त्रज्ञान—तन्त्रज्ञान से सब धर्म-कर्म, धर्मोपदेश और दुष्प्रभाव दूर

전통문화의 계승과 발전에 있어서는 무엇보다도 전통문화의 가치를 인식하고 이를 계승·발전시키는 것이 중요합니다. 특히 전통문화의 계승과 발전을 위해서는 전통문화의 가치를 인식하고 이를 계승·발전시키는 것이 중요합니다.

이러한 전통문화의 계승과 발전을 위해서는 전통문화의 가치를 인식하고 이를 계승·발전시키는 것이 중요합니다. 특히 전통문화의 계승과 발전을 위해서는 전통문화의 가치를 인식하고 이를 계승·발전시키는 것이 중요합니다. 특히 전통문화의 계승과 발전을 위해서는 전통문화의 가치를 인식하고 이를 계승·발전시키는 것이 중요합니다.

이러한 전통문화의 계승과 발전을 위해서는 전통문화의 가치를 인식하고 이를 계승·발전시키는 것이 중요합니다. 특히 전통문화의 계승과 발전을 위해서는 전통문화의 가치를 인식하고 이를 계승·발전시키는 것이 중요합니다. 특히 전통문화의 계승과 발전을 위해서는 전통문화의 가치를 인식하고 이를 계승·발전시키는 것이 중요합니다.

이러한 전통문화의 계승과 발전을 위해서는 전통문화의 가치를 인식하고 이를 계승·발전시키는 것이 중요합니다. 특히 전통문화의 계승과 발전을 위해서는 전통문화의 가치를 인식하고 이를 계승·발전시키는 것이 중요합니다. 특히 전통문화의 계승과 발전을 위해서는 전통문화의 가치를 인식하고 이를 계승·발전시키는 것이 중요합니다.

전통문화

전통문화의 계승과 발전에 있어서는 무엇보다도 전통문화의 가치를 인식하고 이를 계승·발전시키는 것이 중요합니다.

전통문화의 계승과 발전을 위해서는 전통문화의 가치를 인식하고 이를 계승·발전시키는 것이 중요합니다.

전통문화의 계승과 발전을 위해서는 전통문화의 가치를 인식하고 이를 계승·발전시키는 것이 중요합니다.

전통문화의 계승과 발전을 위해서는 전통문화의 가치를 인식하고 이를 계승·발전시키는 것이 중요합니다.

आन्म-जागृति ग्रन्थ-माला के ग्राहक बनने के नियम

इस माता के ग्राहक दो प्रकार के हैं

(१) मेवामार्गी ग्राहक और (२) अपर्यता ग्राहक

(१) मेवामार्गी ग्राहक के चार प्रकार हैं ।

(१) अभ्युदय प्रेमी ग्राहक—जो हमेशा कम से कम एक घंटा उत्तम साहित्य स्वयं पढ़ें और यथारुचि औरों को पढ़कर सुनावें ।

(२) विद्यार्थी ग्राहक—जो विद्यार्थी दो और एक सत्र में कम से कम दो घंटा उत्तम साहित्य स्वयं पढ़ें और यथारुचि औरों को पढ़ कर सुनावें ।

(३) प्रचारक ग्राहक—जो इस मंथा की पुस्तकों के निम्ने के बाद फन्ट्र दिन में सम्पूर्ण पुस्तक पढ़कर दूसरे ऐसे सत्रन को देंगे कि जो फन्ट्र दिन में इसे पढ़कर ऐसे ही नियम के फलक अन्य विद्या की उत्तमोत्तर देंगे । यदि कोई ऐसा लेने वाला न मिले तो किसी सार्वजनिक मंथा में भेंट देंगे । यदि संस्था न हो तो सार्वजनिक पुस्तकालय कोनकर इन पुस्तकों को घर दे और हमसे अन्य उत्तम साहित्य का भी मंचल करें ।

(४) सार्वजनिक ग्राहक—कोई भी पुस्तकालय, पाठशाला, क्लबहाउस, समाचारपत्र, प्रचलन गुरुमुख व स्थानीयगण ।

मेवामार्गी चारों प्रकार के ग्राहकों को इच्छानुसार मूल्य पर या अमुल्य मूल्य पुस्तकें भेजी जावेंगी ।

अर्थदाता ग्राहक—जो इच्छानुसार सहायता हर साल भेजते रहेंगे वे अर्थदाता ग्राहक गिने जायेंगे ।

नोट—सेवासार्थी ग्राहकों को हर तीन महीने के अन्त में पात्र जिस धर्मी के ग्राहक हैं उसके नियम का सीक पालन हो रहा है, ऐसा विवरण पत्र कार्यालय को अवश्य देना चाहिए । यदि छः मास तक कोई धर्मोप विवरण पत्र नहीं आयेगा तो भारका उस धर्मी से नाम भर्त्ता किया जायेगा । यदि यह संस्था उत्तम सेवा करती हुई अनुभव सिद्ध होवे तो गुण परीक्षक सचिव इसकी गूढ उन्नति करें व हर स्थान में ऐसी संस्थाएँ स्थापित करें, यही नम्र प्रार्थना है ।

विनोद—

श्रीभगवन्त अराज हन्तु लोटा, { मन्त्रा
नया भगवन्त कंचिटा,

श्री 'आत्म प्राप्ति' कार्यालय,

यगदी (भारवाड़) बाबा सौजठ रोड

(५) बालगीत—यह बालकों के लिए सारी भाषा में आनन्द व शिक्षाप्रद गीतों की उत्तम पुस्तक है। सोलह पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य केवल आध आना।

(६) भावब्रह्मपुर्वो—इसमें विलुप्त उत्तम प्रभावना है जिस में आचार्यवरों का आशय प्रमाद छोड़ने के हेतु इसकी शुरुआत करने का बताया गया है। इन सके वहाँ तक ज्ञान ध्यान में ही चित्त लगाना भेयस्कर है। यदि यह न बने तो पंचपरमेष्ठि के गुणों को प्रकट करने रूप क्रोधादि चार कषाय व अज्ञान ज्ञय की भावना पांच अंकों में व्यवस्थित की है। इसलिये इसका नाम अनुपूर्वो रक्खा गया है। यह विलकुल नवीनता है। अन्त में शांति प्रकाश के रागद्वेष निवारण व आत्मानुभव के दोहे भी दिये गये हैं। बत्तीस पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य एक आना।

निम्न लिखित पुस्तकें शीघ्र प्रकाशित होने वाली हैं—

(१) बालगीती, (२) जैन सत्त्व प्रश्नोत्तर, (३) नैतिक जीवन, (४) आरोग्य शिक्षा, (५) जैनों में नवजीवन।

उपरोक्त सब पुस्तकों में बढ़िया कागज सुन्दर छपाई और बढ़िया कवर लिये गये हैं, उपरोक्त सब पुस्तकों की साइज फाइन मोडर्न पेजी है।

हमारा के लिये इस कार्यालय को हर कोई पुस्तक कोई भी व्यक्ति प्रकाशित कर सकता है कारण ज्ञान जीव का गुण है। उसे प्रकट करने के साथन सबके लिये समान हैं। सब जीवों को मल्यज्ञान का प्रकाश होकर वे सच्चरित्र द्वारा परम सुख को प्राप्त करें यही भावना है।

व्यवस्थापक,

आत्म ज्ञानि कार्यालय, बगड़ी (भारवाड़)

श्रीआत्म-बोध

प्रथमा भाग



प्रथम भाग
श्रीआत्म-बोध
प्रथम भाग
प्रथम भाग

श्रीआत्म-बोध

पहिला भाग



सन्मोघन-विभाग

सन्मोघन

उपदेशानुत

चोर का थोड़ा भाग काठ में

अभवी को मोच क्यों नहीं

सिद्ध को क्या सुख है

स्व स्वभाव

ध्यान का साहित्य

नौन

भेद भावना

श्रोता को सन्मोघन

आंतरिक आत्मा का आन्दोलन

शरीर की अनित्यता

शरीर की अशरणा

आत्मिक सुख की अधियता

धनोपकरण का आन्तरिक रहस्य

धर्म-क्रिया के समय देश विचिन्तित करने के लिए रखा है, ऐसा सोचकर स्थिर चिन्तित रख। आत्म-कार्य साधना हुआ आगे बढ़। शयन के समय समीप कीर्तियों की याद है, इसलिए करवट लेने समय तुझे दुःख न हो, इस प्रकार यज्ञ पूर्वक वैश्य, आत्मधर्म की प्रतिनिरुपण कर।

तू इन्द्रो द्वारा पुण्य है, तुम्हें महाराजा को महीना ममा में पूर्ण विचार कर शब्दोच्चार करना है, इसलिए प्रिय सत्य, हितकारी, मनभाव दर्शित शब्दोच्चार कर।

चरन निर्वाह के लिए कहों तू आत्मक भाव में अनर्था व असम्य-धारी घन कर भगवान के मार्ग को भूल अपने आनन्द में व्युत्त न हो जाय ? इसलिए सचेत रह।

जल पर स नेत्र भेद कर चलने वाला मनुष्य गिर जाने का चरन दर्शना करता है, उससे भी अनर्थागुणा पश्चात्ताप करने में चरन जाने वाले को करना पड़ता है; और यह पश्चात्ताप करने में चरन नहीं परन्तु अनन्त भय के लिये करना

... चरन को अनुकूल और अनुकूल संयोगों को प्रति-
... समझने की निराली है। कोहों का
... अपना चरन चुकाने का प्रयत्न करने भी हार
... उसका चरन चुकाने जितना द्रव्य भंडार में
... चरन प्रमाद में न ले तो उसके समान हनभागी
... हनभागी में भी अनन्त हन भागी वह आत्मा
... चरन चरन का शरण लिया है। उसे चुकाने के
... चरन चरन दृष्टा है तो भी वह प्रमाद करता है।

संस्कृत(कष्ट) आवें तब सहर्ष उनको इच्छा पूर्णकर, उनसे हर मत। धन्य नरकवासी चतुर्थ गुण स्थानक के स्वामी को। तो तू तो ५-६ गुण स्थानक का अधिकारी है। नवीन कुद्व नहीं होगा, पूर्व सञ्चित कार्य (कर्म) धीरे-धीरे उदय भाव में आवें तो, तू उदार दनकर सब ऋण सुशी से चुका दे। अनन्त पुण्य योग से दस वस्तु की प्राप्ति हुई है, विशेष में सन्त्यक् ज्ञान और चरित्रावस्था की प्राप्ति जो दुष्प्राप्य है, वह तुम्हें प्राप्त है, तो अथ तू खूब पराक्रम कर। समय बीत रहा है। चौथे आरे की तुलना में वर्तमान आयु अति अल्प है।

आज के मनुष्य ५-६०-२५ वर्ष की एक भव की सुख शान्ति के लिए ब्रह्मनिरा मन, वचन और कार्या से प्रयत्न कर रहे हैं; किन्तु तुम्हें अनन्त भव के लिए सत्य और अविनाशी सुख प्राप्त करना है, इसलिए तू जितना आत्मभोग दे सके उतना थोड़ा ही है, अनन्त परिश्रम भी कर्म के हिसाब से अनन्त न्यून है।

साधुपना और भावकपना वही है कि, औदारिक शरीर संबन्धी आवे हुए सानुकूल-प्रतिकूल, इष्ट-अनिष्ट, संयोगों में समता भाव रखना। जो संयोग दुनिया के जीवों को राग द्वेष के पंजे में फंसाकर विजय प्राप्त करते हैं, उन संयोगों को विजयी न होने देने योग्य धन करना, उसीका नाम साधुपना और उसीका छोटा अंश भावकपना है। भूत, भविष्य और वर्तमान काल के अनन्त श्रेष्ठों के ऐश्वर्य और सुख एकत्रित करें तो उससे भी अनन्त गुना सुख सिद्ध के एक जीव को है। इसलिए निदुःख को मनमा रन। किन्तु समय आयुष्य का बंध पड़ेगा, कुछ खर नहीं है। इसलिए एक समय भी आर्तरीद्र (अनीति अचर्म रूप पापमय) ध्यान में

इसका निर्णय कर । सार क्या है और असार क्या है ? इसका पद पद पर विचार कर । विचार मात्र से या शाब्दिक आडम्बर से कार्य सिद्ध नहीं होगा । अध्यात्म ज्ञान-अध्यात्म विचार जब तक प्रवृत्ति में नहीं लाये जाते तब तक चोर का सेठ के भंडार का लूटना और सेठ के जागृत रहने के समान है । पुद्गल-रुचित्याग "देहे दुखं महा फलं" शरीर को भोगादि में प्रवृत्त करने का विचार करेगा तो सहस्र गुने अशांता वेदनीय कर्म पधेंगे ।

आत्मरक्षा के उपाय

(१) धार्मिक क्रिया की वृद्धि करने के हेतु गुप्त जीवन और एकान्त स्थान पसंद कर ।

(२) स्वार्थी परिचय किसी से मत रख । स्वार्थी परिचय ही संसार-बंधन, मोह, तृष्णा और दुःख है ।

(३) सोते समय आज के भले-बुरे कार्य की याद कर ।

(४) व्यवहार जीवन धिताते समय भी कहीं तेरी स्वार्थ-वृत्ति अनंत जीव की घातक न बन जाय, इसका ग्याल रख ।

(५) मन के लिए प्रश्नचंद्र राजर्षि के समान अल्प समय में शुभाशुभ योग से नर्क और केवल दशा का चित्र नैत्रों के सामने ला । मन ही जीव का बंधन और मोक्ष का कारण है ।

मन घंचल मन चपल भति, मन बहु कर्म कमाय;

मन जीते पिन आत्मना, मुक्ति कहाँ से पाय ? ।

X

X

X



(वैशाख) का उलम का दिवाला । अथ ' दो नैत्र के सिवा
कुल शरीर मनो की सेवा (वैशाख) में जगाने वाले मेरुमार को !

जिन में भागे वस्त्र को मूल में साफ मत कर । हे वात जीव !
लोट वाला जस लोट में साफ नहीं होता पर उसके जिये जिन
प्रकार निर्माता उग जल की आवश्यकता है, उसी प्रकार हे
अनन्द ! आनन्द दश में में अज्ञानही अज्ञान का नाश करने के
वास्तव, ज्ञानावस्था दूर करने के वास्ते, सूत्र सिद्धान्त पढ़ने पढ़ाने
श्री वात वाला को प्रकाशित करने की तीव्र इच्छा रख । शरीर
की मात्र प्राप्त ज्ञान की इच्छा भोजन—स्थान, हवा आदि के
विचार ज्ञान वृद्धि में आवश्यक (वाधाही) हैं और ये भाव
अज्ञान का गलत भाव कर लेना, में दुबाने जैसा कार्य करते हैं तो
तु इन्हें मुक्त कर्ता किम प्रकार मान बैठा है ? जन्मी
छाँड़ । जेवन ज्ञान प्राप्त करने वास्ते के भी श्री प्रभु ने १२॥ वर्ष
अनार्य संज्ञ में उग्र तपस्या की तथा परिमर्द सहन किये
मौल धारण किया था । इष्ट सुराह साने में अर
प्रभु ने मुख्य न माना था, जो माना होता तो प्रभु
स्यागते की क्या आवश्यकता थी ? वहीं इष्ट सात्विक
कर ज्ञानी व सुखी नहीं बन जाते ? ऐसे कि
दुःख-दायी विषय क्या बढाने वाले हैं । म
सादि करने में ज्ञान प्यान नहीं बनेगा, शरीर
बन जायगा । ये विचार "पञ्चान्त मिथ्यास्त्री"
बोने में कालकार प्रत्यक्ष में मने ही एक
पर उर्मा बीज के योंई मर्दने के पञ्चाष्ट एक
लास, क्रोधों की संख्या में डेर लगेंगे ।

धर्म क्रिया करने में क्या तुम्हें मास चमक करना है ? क्या तुम्हें मनो भर बजन उठाना है ? क्या तुम्हें उष्णता में आतापना लेना है ? किसलिए भाव से तू कुछ नहीं करता ?

सातवीं नरक की अनन्तवें भाग की वेदना मनुष्य लोक में नहीं । आत्मा ने नरक में परवश अनन्त भावों में अनन्तकाल तक अनन्त वेदना सहन की; उनके अनन्तवें भाग की वेदना भी यह शरीर सहन नहीं कर सकता । औदारिक शरीर का बंधारण भी ऐसा है । कुम्हार के अवाड़े में नरक के जीव को पुष्प शैया जैसी निद्रा आती है ऐसी अतुल वेदना नरक में है ।

इस अवस्था में समभाव से सहन किये हुए अल्प परिसह अनन्त भव घटाते हैं । जब नरक में परवश से सहन की हुई वेदना अल्प भव घटाने वाली है ।

हे आत्मा सानुकूल और प्रतिकूल तमाम परिसह यथावध्य रीति से सह । परिसह है वहाँ लाभ, पारस, पूर्णता, पामरता का नाशकर्ता और प्रभुता का नाशकर्ता और प्रभुता का भी प्रभु है । इसलिए व्याकुल न होते सम-भाव से सहन कर परिसह को दुःख समझने वाला मोहनीय कर्म है । निर्मोहो बन । स्वजन, संघन्धी, नित्र, शिष्यादि तथा पौद्गलित वस्तु पर से ममत्व भाव त्याग दक्षिण दिशा से प्राप्त उत्तर दिशा में ले जाना संसार-वृद्धि, करता है तो फिर रसास्वाद की इच्छा कहीं रही ? दही, दूध, दाल और दूध पाक की भिन्नता कहीं रही ? ऐसे रसास्वाद करने का विचार मात्र भी तुम्हें क्यों होना चाहिए ? शरम ! निर्मोहो बन !!

दुःखी है। निद्रा के समय निद्रा लेने वाला भले ही आराम माने पर प्रभु मार्ग में तो “पाव समझे तिवुचइ” उसे पाव भ्रमण कहा है। ऐसा विचार कर निद्रा त्याग ! निद्रा त्याग !!

तपश्चर्या महात्म्य

निश्चय ही ज्ञान के अनुसार अहार करने में और उससे उत्पन्न हुए मल को निकालने में आत्म-धर्म नहीं है। यह तो शुभाशुभ कर्माधीन है। कर्म न हो तो उभयक्रिया भी मिट जाय। वर्तमान काल में उपवासादि करना उभय क्रिया मिटाने में सहाय्य, फर्त है। उभय क्रिया पर अंकुरा सिद्धत्व दशा प्राप्त होने पर रह सक्ता है। वर्तमान में उपवासादि क्रिया सिद्धत्व दशा प्राप्त करने की निशानों है।

आहारादि उपाधि सिद्धों के नष्ट हो गई है। पर हृद्यत्थों को यह उपाधि लगी हुई है। कर्मसत्ता के कारण आंतरिक इच्छा आहार करने के वास्ते पूर्ण बल लगाती है, पर स्वात्मा के लिए स्वात्माय वस्तु की परीक्षा कर परात्म, पर वस्तु की इच्छा रोकना ही महान् सिद्धत्व, परमात्मपद प्राप्ति करने का अंग है, निशानों है। परेच्छा पुद्गलेच्छा रोकना ही परमात्म दशा है। इसीमे धीव दृष्ट की न्याय सिद्धता प्रकट होती है। जैसे अग्नि मुखर्यादि को विरोध तेजस्वी बनाती है वैसे ही आत्मधर्म को दैदीप्यमान बनाने वाली मुख्य तपश्चर्या है।

“ ज्ञाना महात्म्य ”

उपवासादि क्रिया प्रतिकूल है, ज्ञानादि क्रिया अनुकूल है। प्रतिकूल की अपेक्षा अनुकूल पर विजय प्राप्त करना नहा कठिन है।

एतन्मावावधा में घोररागन, संसारी में सिद्धित्व, आत्मा में सर्वज्ञता और मनुष्य में महानता दियी हुई है।

हे मोक्षार्थी ! तू समझ गया है कि तेरी दशा मिट्टी में भरे हुए, लिपटे हुए सुवर्ण के समान है। तो तुझे उसे दूर करने के उचित उपाय ढूँढना चाहिये। उपाय ढूँढ मिट्टी हटा मूल स्वरूप देख।

आत्मधर्मः—क्रोध, मान, माया, और लोभ नहीं। राग, द्वेष, भय, शोक हास्य, रति, अहंति, नहीं। क्रो, पुत्रप नपुंसक नहीं मार पंटे वेदना नहीं। बिन्दु—

आत्मगुरुः—एमा, निराभिमानता, संतोष, समभाव, निर्मोही निराहार, विद्वत्स्वरूप, घोररागव पराङ्मन्यागी, आनार्थी, पनाः ये ही आत्मिक गुरु हैं।

आत्मगतिः—अनंत पर, अनंत बर्य, अनंत पुण्यार्थ, पराङ्मन, तथा अनंत शाली, अनंत दही, अनंत परिशी और अनंत सत्कीर्ति। ये सब आत्म गति हैं।

आत्म-संयोधन

(Suggestion to be made)

मनुष्य हो, प्रमाद स्वयं, अत्यंत दुर्बल किया पर।

परलोक-यात्रा

(Man to be prepared)

सबु समय को अनेक वेदना ! कदा ! कदा वेदना को मिला !

छद्मत्पावत्या में वातरागन, संसारो में सिद्धित्व, अज्ञानी में सर्वज्ञता और मनुष्य में महान्ता द्विपी हुई है।

हे मोक्षार्थी ! तू समझ गया है कि तेरी दशा मिट्टी से भरे हुए लिपटे हुए सुवर्ण के समान है। तो तुझे उसे दूर करने के उचित उपाय ढूँढना चाहिये। उपाय ढूँढ मिट्टी हटा मूल स्वरूप देस।

आत्मधर्मः—क्रोध, मान, माया, और लोभ नहीं। राग, द्वेष, भय, शोक हास्य, रति, अरति, नहीं। खं, पुरुष नपुंसक नहीं मार पीट वेदना नहीं। किन्तु—

आत्मगुणः—इना, निराभिमानता, संतोष, समभाव, निर्मोही निराधार, सिद्धस्वरूप, वातरागत्व परमुद्गतत्यागी, आत्मार्यो, पता; ये ही आत्मिक गुण हैं।

अज्ञानशक्तिः—अनंत बल, अनंत वीर्य, अनंत पुष्पाय, पराक्रम, तथा अनंत ज्ञानी, अनंत दर्शी, अनंत चरित्रों और अनंत वरलीयता। ये सब आत्म शक्ति हैं।

आत्म-संवोधन

(Cautious to Soul.)

जागृत हो, प्रनाद त्याग, उपयोग पूर्वक किया कर।

परलोक-यात्रा

(Most Important.)

सब समय को अनंत वेदना ! अहा ! उस वेदना को तोना !

हे आत्मा ! आनंद मान कि ऐसा उत्तम समय तुझे प्राप्त हुआ है । इस अवस्था में तू जो धारे बह कर सका है । मोह में यहां से सींचा नहीं जा सका तो एकावतारी होने के लिये तू स्वयं शक्तिमान है, नाना प्रकार की अनंत वेदनाएं मिटाने में समर्थ है, तो प्रयत्न कर । उत्कृष्ट मार्ग स्वीकार । आत्म प्रदेश निकलते समय का और स्नेही जन के अंतिम समय का दृश्य तेरे नेत्रों के आगे ला और चेत ।

समय का मूल्य

आँख मूंदकर खोलने में असंख्यात समय निकल जाते हैं, उनमें से “ एक समय भी हे गौतम ! तू व्यर्थ मत खो ” !! ऐसी आज्ञा भी महावीर प्रभुने अपने प्रियतम शिष्य गौतम को दी है । तो हे आत्मा ! अगर तू महावीर स्वामी का छोटा, प्रिय, अनुयायी बनने की इच्छा रखता है, तो गौतम जैसा बन । मिनटों की तेरी आयु चारों तरफ से लुट जाने वाली है । दुख, कृत्य और अभय-आंत-दशा के दावानल में रहकर भी तू तेरी कौनसी शक्ति पर निर्भर रह कर चुप पैठा है ? एक समय की भी जहां प्रभु के शासन में कामत कृती गई है वहां तू मिनटों और घंटों निद्रा में, बातों में, प्रमाद में खोने की हिम्मत किस प्रकार कर सका है ? सैकड़ों भव घाद तुझे फिर ऐसा अवसर प्राप्त होगा । ऐसा तुझे मालूम होता है ? तेरी मिनटों की आयु होते भी तेरा पुरुषार्थ तुझे कूड़े में से रत्न देगा परन्तु इतना पराकून फोड़ कुँड में से रत्न लेने की तेरी इच्छा कहां है ? पानर ! चेत !!

समृद्धिशाली का पश्चात्ताप

हे चिदानन्द आत्मा ! कुछ विचार कर ! पांच अनुत्तर विमान के देवताओं का पश्चात्ताप, उनका संताप, उनकी हाय हाय, उनका दुःख हाय ! मैंने बड़ी भूल की। मैं आलसी बन गया। थोड़े से के लिये अनंत दुःख। पांच लघु अक्षर कहने जितना समय भी फर्म तोड़ने के लिये मुझे नहीं मिला। घेला (दो उपवास) जितनी क्रिया मैं मैंने प्रमाद किया जिसके बदले में ३३ सागरोपम की छद्मस्थावस्था, उसके पश्चान् ९। (सवानौ) नाह के गर्भ का अनंत दुःख, दात्यावरया का अज्ञान, युवावस्था में चरित्र अवस्था, औदारिक शरीर और अनंत दुःख कष्ट सहने बाद ही अंत में मोक्ष यज्ञ की "पुर्णा-रुची" होगी।

आत्मा ! तेरी प्रमादवस्था का कुछ विचार कर। कौनसी क्रिया प्रभु की आज्ञानुसार पात रहे है ? निद्रा व रसात्वाद त्याग, कपाय-जीत सम भाव से रह, औदारिक शरीर द्वारा कर्म कृत्य कर। धन्य श्री सुषाहकुमार कि, जिनकी पुण्याई व. पवित्रता की प्रशंसा भी चोर प्रभु ने श्री गौतम स्वामी के सामने की। धन्य उन गहान रिद्धिवन्त महानुभाव को ! प्रभु के पास चरित्र अंगीकार किया। उससे १५ भव में मोक्षारुढ़ होंगे। तू रिद्धिवान है पर सुषाह कुमार के समान रिद्धि का त्याग नहीं करेगा तो अतुल पश्चात्ताप करना होगा ? हे चैतन ! तू किसलिये अभिमान करता है ? कौन सी और कैसी तू आशा बांध रहा है ? घनाजी जैसे उग्र क्रिया के करने वाले भी सर्वार्थ सिद्ध पश्चान् मनुष्य भव, उसके पश्चान् मोक्ष प्रोप्त कर सके - तो तेरी क्रिया, व्यवहार, शक्ति, प्रवृत्ति, परिणाम (भाव) किस

चूस कर, नल मूत्र फेंक देने की आशा करता है तो मैं भी सच देह पिछों को फेंक देने की आशा करूँगा। भले ही तू चक्रवर्ती हो, सेठ हो, या कंगाल का पिंड हो, लाखों का पालक हो, या लाखों का नाशक, प्रत्येक का सत्त्व चूसकर फेंक देने की आशा दूँगा फिर भी न मानेगा तो तुम्हें जला डालने की आशा दूँगा। फिर भी अगर तेरी हड्डी आदि का कुछ भी अंश रह जायगा तो तुम्हें समुद्र में फेंक देने की आशा दूँगा, जिसमें तेरा नाम निशान भी नहीं रह सकेगा। उस समय तेरा अभिमान मन का मन में हो रह जायगा। मेर पर सवा सेर का विचार कर। तेरी कड़ाई त्याग। जब से तेरा जन्म हुआ है तब से ही मैंने तेरा पीछा किया है।

नवजीवन मंत्र

हे पिदानन्द ! लिख २ कर ग्रन्थकर्ता नहीं बन सके। बड़ी २ बातें करने से महत्ता नहीं बढ़ सकती। परिणाम (भाव) की प्रभुता से प्रभुत्व प्राप्त नहीं होगा। विचार मात्र से बीतरागी बन प्राप्त नहीं होगा। उपदेशक बन उपदेश देने से सुगति का अधिकारी नहीं हो सके। दूसरों का सामान्य जीवन देख कर तुम्हें तेरे जीवन पर संतोष नहीं करना चाहिये। तू तेरी आत्मा को सच से छोटी समझ कर भी दूसरों की अपेक्षा वर्य्य कार्य करने में अप्रमादी बन। बाह्य आडम्बर से आत्मिक लाभ की प्राप्ति नहीं होगी। विचारानुसार व्यवहार न हो तो ऐसे सद् विचार द्रिस्त फल के ? परिणामों (भावों) के अनुसार प्रवृत्ति न हो तो उन परिणामों का मूल्य क्या ?

वर्तमान में पाश्चिमात्य फिलोसोफर्स की फिलोसोफी सिर्गशब्द

फिर मनुष्य को दुर्गद मय पौद्गलिक इच्छा-वास्तना तरे "नव-जीवन" के सृजन में भी कैसे उठ सके ?

जब तक तूने पुद्गल (स्थाना, पाना, सोना, धैठना, इत्यादि) के भोगोपयोग की इच्छाएं उपशात नहीं कीं, तब तक तू पुद्गलानंदों की तरह पुद्गल परावर्तन में फँस कर संसार-चक्र में भटकेंगा।

रस्सी पर चलने वाले मशरों की जितना डर है, उससे विशेष डर सम्यक्त्व धारण कर आत्मा को प्रभुमार्ग रूप रस्सी पर चलने में है। तलवार पर चलना, लोहे के चने चबाना, तराजू से नेरु पर्वत तोलना, नख से पर्वत खोदना इत्यादि कठिन है। इनसे भी विशेष कठिन प्रभु नर्ग रूपी तलवार पर चलना है। उपरोक्त उपमाएं भगवान भी महावीर प्रभु ने अनंत ज्ञान में देख कर लगाई हैं। ये उपमाएं जबतक तूने मान्य न कीं और विजयी बनने का प्रयत्न नहीं किया तबतक तू मुमुजु की गिनती में नहीं है। मत्त स्वरूप प्राप्त कर। धीरे-धीरे मोह दशा छोड़।

मेघराज राजा ने एक जं.व के लिये अपने शरीर को नांस की तरह तोल दिया था। इसीका नाम दया ! वे तो चौधे गुण स्थानक के अधिकारी थे। तू ५-६ ठे गुण स्थानक का दावा करता है तो तुझे जीव दया के लिये कौनसा शक्य कार्य करना चाहिये ? तुझे तेरे शरीर पर कितनी निर्मलता, निर्मोहता रखनी चाहिये ? जहां शरीर पर मनस्त्व भाव है, वहाँ आरंभ है और जहां आरंभ है, वहाँ छः काय का नाश है।

गड सुहुमाल जी ने, ४९९ शिष्यों ने, मैतारज मुनिराज ने, धर्म रुचि सखगार ने, इंदरजी ने, धनाजी ने, और महावीर स्वामी ने शरीर पर से कितनी मनता उतार दी थी ? धर्म-रुचि

तो क्या तु सिद्ध नहीं हो सका ? तेरे जीवन में पुण्यार्थ भी ही बनी हैं ।

पुण्यार्थ, पुण्यार्थ की भग्न भानि कहलिया तेरे बर्लंगों पर होते भी तू प्रमाद त्यागने को पेटा नहीं करता । मनु "भी धीर " के साम्राज्य में पुण्यार्थ ही पूर्य बने हैं । इसका कारण है तो उन महा पुण्यों का पुण्यार्थ ही दृष्टिगत होगा, भी बीतराग के मार्ग में जहां महा पुण्यार्थ की ही विगुण बजती है । बिगुण तू सुन नहीं सगा । इसका कारण तेरी अपौर नींद है । निकट अभी तो आत्म्य त्याग विगुण सुनने ही एकदम ठठ गड़े हुए है । तो हे बीर पुत्र ! तूभी ठठ । तेरी आत्मा का सूर्य अभी चमक रहा है । मोक्ष मुकट तेरे सिर पर रखने का समय आ गया है तो आये हुए समय का स्वागत कर ।

उपदेशामृत

अनंत काल में जो विषय-कषाय-मय संसार की परिस्थिति बनी आती है । उसे जानी ही दूर कर सके हैं । पांचवें आरे का यह मूढ़ी है कि पाप कार्य विषय, कषाय, संसार आदि बढ़ते देर नहीं लगती । बाल्यावस्था निर्दोष है । पर बिना मुशिक्षा के सुवाक्या दोष का घर है । जैसे केती के वृक्ष से या फांदे में से एक के बाद एक तह (परत) निकलती जाती है वैसे ही संसारी के संसार बंधन एक के बाद एक बढ़ते जाते हैं । और संसारी इसीमें आनंद मनाते मालूम होते हैं । संसार का स्वभाव जन्म-मरण को बढ़ाने वाला है । संसारी संसार के बंधन बढ़ाने को तैयार हैं तो त्यागी संसार को जड़-मूल इसाड़ फेंक देने का प्रयत्न कर रहे हैं । आ-

जो छूटती है कि नहीं ? ऐसी कँपकँपी ककड़ी के जीवों को मुँह के लगने से नहीं छूटती होगी ?

१४—आजकल बहुत गर्मी पड़ती है, इसलिये विशेष स्नान तो ठीक । अरे साता के पुतले ! गर्मी में भैरू भवानी के र तप रहे हैं । उन्हें पाडे धकरे के रुधिर को अपेक्षा मनुष्यार से स्नान करना अधिक पसंद है, तो तू तेरा कुछ खून देकर ही को स्नान करा । क्या मालूम होता है ? अल्प सुख के लिये तू जीवों की हिंसा मत कर ?

१५—दाल, साग, में मिर्ची नहीं; अरे ! ओ !! क्या हुआ ? जे फूट गई थीं ? ले तेरा सिर ! आदि वाक्य थाण छोड़ कर तो फेंक उठ जाता है, अरे रस गिर्दी ! ऊपर से नमक मिर्च में तुझे क्या स्वाद आता है ? अरे यह तो समझादे ? अरे द के गुलाम ! तेरी हड्डी का चूर्ण मेज़ी माता को अत्यंत प्रिय तो तू उसके आहार को स्वादिष्ट बनाने के वास्ते तेरी हड्डी का चूर्ण दे । क्या दे सकेगा ? चमड़े की जीभ के स्वाद के वास्ते असंख्य प्राणियों के वध करने का कसाई कृत्य तू क्यों कर रहा है !

१६—अन्न यही विष्टा; और विष्टा यही अन्न, तो दुनिया में ऐत वस्तु कौनसी है ?

१७—हे शौकिन ! बूट को कीलें, व एड़ी लगा कर पहनने, तथा ऊंची टाटि रखकर चलने में ही तू तुश रहता है, पर ई ! इससे कीड़ी आदि को क्या दशा होती होगी ? किसी ने इसपर विचार किया है ? उन प्राण विदारक बूट पर चलने में अपेक्षा श्रेष्ठ है कि तू तलवार की धार पर चलना सीखे ।

१८—सूर्य भगवान का तीक्ष्ण प्रकाश इतना तेजोमय है कि

७—जड़ में या चैतन्य में तुम्हें क्या लेखनात्र भी भिन्नता मालूम हुई है ?

८—घोर को सभी बातों का ज्ञान है, तुम्हें नहीं ।

९—शरीर का सन्धन्ध काष्ठ की तरह विलकूल भिन्न है—तुम्हें परसा कैसे मालूम होता है ?

१०—तुम्हें क्या नहीं दिग्नता ? अन्यत्वपना ?

११—शरीर को स्त्री, व पुत्र के समान भिन्न समझने, वे शानी हैं और स्त्री पुत्र को अपने मानते हैं वे मिध्यात्वा हैं । शरीर को अपना समझना नहानिध्यात्व है । सनटाष्टि को स्त्री पुत्र के समान शरीर भी भिन्न दिखता है ।

१२—भिन्न समझने वह आत्मा संसार से भिन्न है । जो भिन्न नहीं समझने वो उनकी आत्मा संसार में शरीर की तरह जड़ हैं ।

१३—देह व आत्मा को एक समझने वाला अनंत संसारी, मिध्यात्वा और कृष्ण पक्षों है । देह—आत्मा को भिन्न नमनने वाला परत संसारी भवी सम्पत्त्वी और शुद्ध पक्षों है ।

१४—अभवा को शरीर प्रत्यक्ष में भिन्न नहीं दिग्नता, भवी को शरीर प्रत्यक्ष भिन्न दिखता है ।

१५—काष्ठ और शरीर की भिन्नता का घोर को जो विचार आता है यही विचार शरीर से निजने का तुम्हें करना आज्ञाय तो तू सम्पत्त्वी हो जाय ।

१६—शरीर संग से निष्ट भवी लज्जा पाने हैं

१७—थोड़ा भाग कष्ट में से छूटने में आनंद होता है ता सारी कवच वाली हालत से छूटने में कितना आनंद आनंद होता है सो सारी कवचवाली हालत से छूटने में कितना आनंद हो ।

अमबी को मोक्ष क्यों नहीं ?

१—नित्य विभाव दशा है वहां पुद्गल दशा है, पुद्गल दशा है वहां जाल दशा का अभाव है ।

२—पुद्गल दशा वही जड़ संगी दशा है, और जड़ संगी दशा वही मंजर दशा है ।

३—अवतं अर्थात् स्वस्वरूप की योग्यता, और स्वस्वरूप वही जालदशा है ।

४—जालमन होना यह भवी का बिन्दु है, पुद्गलविपत्ता यह भव्य की अनिच्छता का लक्षण है ।

५—जालदशा वही मोक्ष है, पुद्गल दशा वही बंध है ।

६—जालानन्द वह जालानन्द है और वही निष्ठ भव्यता है । पुद्गलानन्द देहानन्द है और वही अभव्यता है ।

७—अमबी और जड़ में क्या भिन्नता है ? त्रिकाल दोनों संसार में रहते हैं !

८—यही जड़ होते भी कल से चलने की शक्ति रखती है और अमबी में अपनी वैयर्थ्य शक्ति है ।

९—दुर्भवी वह अमबी से निष्ठ और भवी से दूर है ।

१०—स्वभाव का ज्ञाता वह भवी और विभाव वाला अमबी है ।

११—विषय सुख के प्रति उदासीनता वह निष्ठ भवी है और शिथिल सुख में उदासीनता रखता है वह अमबी है ।

१२—पुद्गल के साथ जीव अष्ट होता है और स्वभाव से मुक्त रहता है ।

२३—आत्मा संसार में या सिद्ध अवस्था में मूल स्वरूप में मान है ।

२४—पानी स्वच्छ है । रंगीन शीशों में भरने से रंगीन पानी देखता है । आंख स्वच्छ है, रंगीन चश्मा लगाने से सब रंगीन देखता है । बाकी पानी और आंख मूल स्वरूप में कायम है ।

२५—आत्मा कर्म } एकमेक होने का अनादि काल का
पानी शीशी } स्वभाव है । शीशी पानी को अपने
रंग सा बना लेती है । सिद्ध को
क्या सुख ?

१—कुए का मेंढक समुद्र का माप कैसे निकाल सकता है ?

२—पूर्ण स्वरूप अपूर्ण की समझ में किस प्रकार बैठ सका है ?

३—अंधा घुम्बू सूर्य प्रकाश को कैसे जान सका है ?

४—सम्यक् दशा के मुख भी न समझ सकें तो सिद्ध के मुख कैसे समझ सकते हैं ?

५—श्रेणिकादि असंख्य सम्यक्त्वी जीव नरक में किस प्रकार सम-भाव से रहते होंगे ? जब चौधे गुणस्थान का स्वरूप भी न समझ सके तो सिद्ध के मुख किस प्रकार समझ सकते हैं ?

६—तीर्थंकर प्रभु भी मोक्ष सुख का वर्णन नहीं कर सके ।

७—सिद्धता वहां पूर्णता ।

८—मच्छ जन्म लेते ही तैरता है वैसे ही सम्यक्त्वी का वभाव तैरना ही है ।

९—सोधना लिखना छोड़, कर्मतोड़, निवृत्ति जोड़ ।

धातु है तबनी प्रकृति क्यों नहीं? "सद्भावरत्न दुल्लभ" का क्या धर्म है?

६—सचमुच कृपिकार विश्वासी हैं। भूले रह कर भी धान्य कर फलत लेने का विश्वास रखो। इस दृष्टि से आत्म-सुख विश्वासी ने कितनी त्याग कृति की दृढ़ता रहनी चाहिये?

७—दृग्गज को जल समझकर नृग विश्वास से दौड़ कर प्राय देवे हैं। तो स्व-स्वभाव ने कितनी भ्रष्टा होनी चाहिये?

८—जग दूसरों को ठगते हैं वू साहूकार होकर खुद अपने को ही ठगता है।

९—शुद्ध पर जैसी दृष्टि पड़ती है। अनिष्ट पर वैसी ही दृष्टि कभी पड़ी थी?

१०—प्रसंशक के समान निंदक के भी कभी गुण हर्षभाव से गाये थे, पाद है?

११—चौरस को सरस समझ कभी हर्षभाव से स्वाकार किया था?

१२—प्रसंशक की निंदा और निंदक के गुणगान किसी समय किये हैं? आत्मा सिवाय अन्य कोई साक्षी नहीं हैं।

१३—ज्ञानी के समझाये बाद भी वू सर्वत्र दुग्गज चुन्वक को क्यों बिरक रहा है?

१४—नकोड़ा दृढ़ता है पर दृढ़ता नहीं, ऐसी क्या तेरी दशा नहीं है?

१५—आधुनिक प्रकृति नश्वर-हनीय बांधने वाली है। या उससे भी विरोध बढ़कर?

५३—चौदह रातु का गेह त्याग, शिवपंथ की भज, शम्भुत
। मांग, अराधन की दे आन ।

५४—पुद्गलानन्द होइ, अमानन्द जोइ, स्वस्वभाव माय,
। भाव पेइ ।

५५—पुद्गल में घाम तो शिव सुर का नारा, पुद्गल की
। ज हो आत्मा की घात ।

५६—पुद्गल में पूरा संसार में दूरा, संसार में दूरा, स्व-
। रूप में अदूरा ।

५७—सम्भार में अदूरा उमरा संसार में दूरा, पुद्गल
। विचार, शान्त अगोचर ।

५८—विचार में घाम, स्वस्वभाव का नारा, विचार में गये
। हर स्वस्वभाव के कपड़े ।

५९—पुद्गल सुराज्य, शान्त सुराज्य ।

६०—विचार वैदरानी, बरतें सब निमैनी (निमैनी) ।

६१—विचार में मर, बरतें में मर ।

६२—विचार बरत है कि दूरा बरत है ? पदम है कि
। पुद्गल है ।

६३—निर्मल आनन्द अद्वैत है, अद्वैत दर पर—आनन्द
। निर्मल है ।

। आनन्द का साहित्य । आनन्द साहित्य ।

१—अमरीन्दे का, निरु के मुल का, व अरि का विचार कर ।

२—आनन्द मुल बरतें है ? आनन्द में अमानन्द विम अद्वैत
। होतें हैं ? मोक्ष ।

१४—इहाँ सुमती, समय की भावना, आत्मा का अयोगी झटोल स्वरूप रहते भी राग, द्वेष से कर्म शरीर डोलायमान हो जाता है तथा छः काया की घात का भरीन ले कर जहाँ तहाँ दौड़ता फिरता है, धन्य उस अरूपी अवस्था को !

१५—हे सेठजी ! कलम से तुम लिखोगे कि इस दमड़ी की बलम से तुम खुद लिखाओगे !

१६—हे सुतार ! कर्म रूप लकड़ी को तू खीरेगा, कि तू लकड़ी से चिराया जायगा !

१७—अरे कुंभकार ! मिट्टी को तू कूटेगा कि मिट्टी तुम्हें कूटेगी !

१८—हे सोनी, लुहार, तुन पड़ोगे या पड़ाओगे !

मौन

१—मौन, मोक्ष का अनुत्तर मार्ग है । विभाव दशा को त्याग स्वभाव में लाने वाला स्तंभ समान है ।

२—मौन, स्वभाव में लीन बनने का उपदेश देने वाला सन्ध्या गुरु है, आत्मा का स्वभाव है ।

३—मौन बीतराग पद का अनुभव कराने वाला है, विषय कषाय को नाश करने वाला मौन है ।

४—मौन, विषय कषाय को रोकने का फेंद-स्तम्भ है ।

५—मौन समुद्र समान गंभीर है, नदी समान सरल है, आकाश समान व्यापक है ।

६—मौन, यही भगवान् महावीर का श्रुतिपद है ।

७—मौन, आत्म समाधि का शुरुआत है ।

१८—भेदज्ञान ही संयम का सार है । भेदज्ञान ही यथा
म्यात परिग्रह है ।

१९—भेद ज्ञान यह लघु बंधन दसा है ।

२०—रणासो-आस बिना जड़ता, उसी प्रकार भेदज्ञान बिना
अज्ञान रूपी जड़ता ।

२१—"अमलान भावे माणे विहरइ" यह भेद ज्ञान ।

२२—भेद भाव बिना अनन्त संसार, भेद भावना ने
अनन्त गुण ।

२३—भेद भावना भव नाशिनी, भेद ज्ञान से, अभेद
(बंधन) ज्ञान की प्राप्ति ।

श्रोता को सम्बोधन

१—पुन्य पाप के स्वरूप को समझो, बकरी निकालते ऊँट
न पुंगे, कुल घट-संसार के कार्य हाथ से करो, नौकर से बराने
"हम पार से बच गए" ऐसा भ्रम निकास टालो । मुनिराज
अपना छोटा तथा बड़ा सब कार्य स्वयं करते हैं । उपयोग रहित
नौकर से प्रत्येक कार्य में विक्षेप अवज्ञा होती है ।

२—तुम मे प्रयास न बन मरु तो सिर्फ रोज १ मिनट
प्रगति मार्ग से घटाते रहो । चार वर्ष में तुम सम्पूर्ण निश्च हो
जाओगे ।

३—पोजीटिव्ह और नेगेटिव्ह दो तार के मिलने से विद्युत्
व्यवह होती है उसी प्रकार साधु और भावक का सत्य संपदन
समाज में नई जागृति पैदा करता है ।

८—वस्तु की कीमत नहीं पर समय की कीमत है । मजदूर लाखों इंटें उठाकर जीवन पूर्ण करते है तो भी उनकी ओर कोई शंख उठाकर भी नहीं देखता । श्रीकृष्ण ने वृद्ध मजदूर की गहायता के लिए एक इंट उठाई थी । वह प्रभु ने समवसरण में खानी और गणधरों ने शाख में गूंथी ।

९—पशु संसारी और कैदी संसारी सच्चे आवक या साधु की अपेक्षा परवश रहने के कारण अपनी आत्मा विशेष दमते हैं । पर यह व्यर्थ है, पर ज्ञान सहित क्रिया करनेवाला अन्त मुहुर्त में केवल ज्ञान के समीप पहुँच सका है ।

१०—मृत्यु के समय मनुष्य मात्र प्रायः निमग्न बनते हैं वे जीवित रहते निमग्न बन जायें तो सच्चे ज्ञानी हैं ।

११—ऋषभ प्रभुजी के शरीर को उनके पौत्र श्रैयांस कुंवार ने इधु रस बहेरा कर पोपा था और महावीर प्रभु के शरीर को चंदन बालाजी ने उड़द के बाकले बहेरा कर पोपा था । महावीर स्वामी के लिये उनकी सासु के छांटे हुए नवरत्न की अपेक्षा बाकले अधिक कीमती थे ।

१२—महावीर को उनकी सासु ने नवरत्न से बधा जमाई समस्त संसार की सगाईमान संसारबढ़ाया था । पर चंदनबाला ने धर्म गुरु समस्त उड़द के बाकुलेबहेरा कर संसार का अंत किया । विशेष कीमती नवरत्न या उड़द के बाकले ?

चंदनबाला की गुण ग्राहकता

१—हे जननी पदमावती ! तू मुझे मांस पिंड में जन्म दे मुक्त हुई, पर मेरी माता मूला ने मुझे महावीर परमात्मा के दर्शन

Handwritten signature

$\frac{1}{\sqrt{2}}$

A handwritten musical score for the song 'The Rose Tree'. The score is written on ten staves. The first staff begins with the title 'The Rose Tree' and a key signature of one sharp (F#). The notation includes various musical symbols such as notes, rests, and bar lines. The handwriting is in a cursive style, typical of 19th-century manuscript notation. The score is arranged in a single system across the ten staves.

Handwritten musical notation in Devanagari script, likely from a manuscript or printed score.

दर्शन प्राप्त कर प्रत्येक मनुष्य का अज्ञान अंधकार तेरे मौन रहने पर भी दूर होजाय, वैसा प्रभावशाली बन ।

पृथ्वी के समान—सहन शील और आधार भूत जीवों की मात्रा के समान बन ।

अग्नि समान—उज्ज्वल कांतिवान बन, तप-तेज से अग्नि ज्वाला बन, एक ही दिशा में, उच्च दिशा में सिद्धशिला की और वहां के निवासी सिद्धों के तर्क तेरी अहर्निश टटि रख, ऊँचे नेत्र कर उन्हें देख ले और वैसा नू बन जा ।

वायु के समान—विशेष आदर्श जीवनी बना । मौन रह कर म्यात्म उज्ज्वलता बढ़ा, जिसे निर्मल होने की इच्छा होगी वे लाभ लेंगे ।

हाथों के समान—हरिसह के समय सहनशील बन तथा अपने पद की याद कर । जोरम उठाने वाला बन ।

पृथ्वी के समान—समय-समय स्व लक्ष्मी दिखाते, दित रात टटि नीचा रखते, जगत का उपकारी होकर जगत का गुलाम बन, जोरम उठाकर आगे बढ़ता चल ।

सिंदू के समान—हरिमह से निरंतर बन, आत्म-ध्यान के मद में मस्त, अक्षय्य बन, जीवन प्रवाह की आगे बढ़ाया कर ।

सर्प के समान—दुर्ग के समय तथा एपरु के समय बिल प्रवेश का विचार रख । मर्ग त्यागी दुर्द कांक्षी की ओर नहीं देखना, वैन ही संसार के विषय की २३ दिव्य को विनिरा कर उनके प्रतिवृत्त स्थिति में विचार । त्यागे हुए विषय की ओर टटि भी मत कर ।

श्रीआत्म-बोध

सकता है। जो विषयानन्दी मनुष्यों को आत्मिक सुख की
 ता का क्याल नहीं आ सकता ।

८—जहाँ तक नू भांग-विज्ञान का चंष्ट कोशिया न
 समान विपले नहीं समगता, और सर्प, कांचली व्याग कर
 जाता है। जैसे ही भांग से डरकर पीछे नहीं हटता, तब
 निश्चय समझ कि अभी पुद्गल परावर्तन करना शेष है ।

९—विषय घासना घट जाय तो वहीं परम पुद्गल परायत
 समन लेना चाहिए ।

धर्मोपगरण का आंतरिक रहस्य

१—आसन के रस्मी लगी हुई है, उसी प्रकार मेरी आत्मा
 कर्म समूह में लिपटी हुई है । पर जिस प्रकार आसन से रस्ती
 अलग तुल सकती है जैसे ही आत्मा में कर्म समूह पुरुषार्थ द्वारा
 दूर हो सकते हैं ।

२—आसन पर की रस्मी दूर होने का जैसे पूजणी अलग
 और आसन अलग हो जाता है जैसे ही कर्म वर्गणा रुपी रस्मी
 दूर होते ही आत्मा और शरीर स्वाभाविक विभक्त हो जाते हैं
 और आत्मा को मून मिड अवस्था प्राप्त हो सकती है ।

३—संकुचित किया हुआ आसन विशेष फैल सकता है
 जैसे ही पुरुषार्थ द्वारा मेरी आत्मा को हुरी हुई अनन्त शक्ति
 विरहित हो सकती है ।

४—आसन बैठने के लिए
 के जायों का है

१५—'प्रतिपक्षों' का पट डोलने समय उन और ग्यारह में से कोई एक रहने की भावना नहीं चाहिए ।

१६—'तमसुओं' का पट डोलने समय उनका ही प्रतिपक्ष विशेष ध्यान करने की भावना नहीं चाहिए ।

१७—'सामान्य' के समय शरीर का भाव हटा जानना ही नहीं की भावना नहीं चाहिए ।

१८—'सौम्य' का पट डोलने समय चौबीस तर्कियों के एक समूह के ही ध्यान की भावना नहीं चाहिए ।

१९—'महाभारत' पूर्ण होने पर 'विचार है मेरी विषय वस्तु' का ध्यान की कि 'आत्म-धर्म छोड़ सामाजिक कार्य में प्रवेश करना है'। 'महाभारत' का ध्यान करने में ही जीवन व्यतीत होश, भी भावना नहीं चाहिए ।

वारह अक्षर

व्यवहार और निश्चय से

अक्षर १. अ—एक जीव को जन्म का समय तब तक रहा करने यह व्यवहार अक्षर और जो जन्म जीव करने बरा हो कुछ जन्म है उस जन्म जीव को धर्म वस्तु में लुप्त हो और जन्म हुए रहा कर हुए इति करने यह व्यवहार है जन्म का जन्म में जन्म हुए जन्म को निर्मित करने यह निश्चय व्यवहार विचार अक्षर है ।

अक्षर २. अ—एक जीव नहीं यह व्यवहार अक्षर और ऐतिहासिक वस्तु को जन्म करने । यह निश्चय व्यवहार है ।

शांत भाव या चीतराग भाव से व्यवहार करे यह निश्चय सामायिक प्रथम है ।

प्रथम १०वां—मन घचन और काया के योग एकत्र कर एक स्थान पर बैठ धर्म ध्यान करे यह व्यवहार और श्रुत ज्ञान द्वारा मनोबल विभागों का त्याग कर ज्ञानयंत्र जीवों के गुणानुवाद करे यह निश्चय दिशापनामिक प्रथम है ।

प्रथम ११ वां—आठ पहर तक समता भाव रख साधन प्रवृत्ति त्याग निराश्रमी हो विचरे यह व्यवहार और अपनी आत्मा को ज्ञानादि से पोंप कर पुष्ट करे यह, निश्चय पोंपध प्रथम है ।

प्रथम १२ वां माधु, मुनिराज, तथा स्वधर्मी आदि सुपात्र जीवात्माओं को अपनी शक्ति मुखाभिक दान दे वह व्यवहार और अपनी तथा परकी आत्मा को ज्ञान दान देना, पढ़ना, पढ़ाना यह निश्चय अतिथि प्रथम है ।

❀चौदह नियम निश्चय भाव से

१ सधितः—एक सधित ने १२॥ मोड़ भय बाद स्वधरु जो ने पैर ते शरीर ने स्नान उतारी थी । थिक् पैरभाव को ।

२ प्रथमः—पुद्गलार्जुन यह पुद्गल पगवर्जन कराने, ज्ञान और संसार में भगवत बगने वाला है ।

* धारक को निगर्जन १४ विदम को मर्दादा-बर्ती आदिदे । भ-
मर्दादिन जं वन से मर्दा बर होता है ? मर्दा जपर बगाने मर्दे है । इससे
उमर बर हमेला १४ विदम थिक्ते मर्दादा बरें ।

फुटकर विषय

स्वतंत्र विभाग

उत्तम वाक्य,
वेदनी के समय का कर्तव्य,
आत्मिक मुद्रालेख (Motto)
चार प्रकार
भय विदारक
जानने योग्य
गुलाभेद

न सुख, न दुःख है न अन्धकार, सिधे अन्धकार से दूर देवा
करहा है और देवा दूर है ।

८—संसार के सारे कर्मे हुए हैं और सारे सही कर बहाए
हैं ; इस जगत् के सब सब कार्य महान्त करिने के अर्थ से
और सब सही करिने हमारे के होते पर संसार में ही अन्धकार
मान सब कर सके हैं, तो ऐसे सब विचार और सिधे अन्धकार
रचना करिने ।

९—संसार सब में सारे सही करिने और सब
सिधे के सब में सही करिने ।

१०—सुख और दुःख अन्धकार में सही करिने

११—संसार के अन्धकार में सही करिने ।

१२—सुख और दुःख अन्धकार में, अन्धकार सब में
सही करिने ।

१३—संसार सब में सही करिने ।

(१) अन्धकार में सही करिने ।

(२) अन्धकार में सही करिने ।

(३) अन्धकार में सही करिने ।

(४) अन्धकार में सही करिने ।

१४—सुख और दुःख अन्धकार में सही करिने ।

१५—सुख और दुःख अन्धकार में सही करिने ।

१६—सुख और दुःख अन्धकार में सही करिने ।

१७—सुख और दुःख अन्धकार में सही करिने ।

१८—सुख और दुःख अन्धकार में सही करिने ।

२६—भद्रिदा दिया हुआ वस्तु ननुष्य जिस प्रकार स्त्री को माता और माता को स्त्री कहता है वैसे ही संतारी जीव मोह प्रदानता में सत्य सुख को दुःख मानते हैं और दुःखतागर में डूबने वाले को सुख का विषादा समझते हैं। धर्म को अधर्म और अधर्म को धर्म कहते हैं।

२७—त्यागने की वस्तु का संचय करते हैं और मंचित करने की वस्तु को तिलांजलि देते हैं ऐसे नृत्त कौन है ? जो संसार के विषयो में लीन हो। अज्ञा ! संसार की विविध दशा है।

२८—आधे संत अन्न और एक दुकड़े वस्त्र के लिये ननुष्य चित्तान्तरित रह हार रहे हैं। भाग्य शाली पुरुष धर्म-तत्त्व पहिचान नहीं हैं।

१—दुःखी को दिलासा देना चाहिये किंतु हिम्मत छोड़ कर घबड़ाना नहीं चाहिये।

२—एक अच्छी माता सौ मास्टरों का काम करती है। इसलिए अपनी बालिकाओं का व्यवहारिक और धार्मिक शिक्षा देना चाहिये जिससे भविष्य में वे बालिकाएं अच्छी माताएं बनें।

३—विषयासक्त ननुष्य सदा दुःखी और निर्धन है।

४—जिसकी तृप्ति विशाल है वह हमेशा दखिनी है।

५—सराद विचार करना विष पीने के समान है।

६—जिसने मन जीत लिया उसने जगत् जीत लिया।

७—जिसने काम जीत लिया वह सब शूरवीरों में सरदार है।

८—ज्ञान गर्व के लिये नहीं परस्व और पर के बोध के लिये है।

६—हाड़, नाँव और गून ये तीन बन्धुग रागीर बी हैं।
हाड़, नाँव और गून को पाहू मत रख ।

७—वेदनों के समग्र समभाव रखने में दृढ वेदनों का
लय होता है भाव में अनंत जन्म, जरा, मृत्यु को पीड़ा कमशेरी है।

८—मानसा है तो दुःख है, न मानसा होता अतन मुग है।

९—समष्टि जीव भौतिक आदि तरङ में रहते भी समभाव
रख रहे हैं तो तू पाँवों, हाँदों और सतवें गुरुभान का अधिकारी है।

१०—वेदनों का तू घुल लीकर नहीं है तो उनके दधान में
रह जाय । वेदनों पर तेरे ऊपर का मैत्र है, जिसे दूर करना तेरा
प्रधान कर्तव्य है ।

११—हाड़, नाँव और गून आदि दग्धन हैं । गना है
निष्ठान के निष्ठ, पोना है वेदनों के निष्ठ और पहना है पाड़ने
के निष्ठ, ये तीन के तन गान निष्ठान हैं और उनही तानि
में मुग बन पंम जाते हैं ।

आत्मिक मुद्रा लेख

१—हे आत्मा ! अज्ञान में स्वप्न दृष्ट ।

२—हे आत्मा ! तू तेरे स्वयं में रह ।

३—हे आत्मा ! तू परमाना बनेगा ।

४—हे आत्मा ! तू अज्ञान, पराने भेद का विचार कर

५—हे आत्मा ! तू जीव है ! अज्ञाने आदा और ब्रह्म जनेगा
इसका एकांत नम्र में विचार कर ।

६—हे जीव ! रात द्वेय को जेत ।

७—हे विद्वान्द ! रत्न विमानि रख ।

२४—हे सत्य के इन्द्र ! दान, दया और तपुना बिना
बन्ध दूर है ।

२५—हे सुसाक्षि ! पंचविकट है (मोहकपाय आठकुनादि)
ते हैं जिससे भँपकर ढग है । भावधान रह ।

२६—हे वसौपारी ! आत्मिक इन्द्र के लिये असंतोषी रह
र विषयादि में संशय रख ।

२७—हे शिवाभिलाषी ! दान शिष्य तप की भावना भाव ।

२८—हे सुन्तभिलाषी ! इष्ट अनिष्ट, संयोग त्याग ।

२९—हे शूर वीर ! कर्म तेरे नौकर हैं । तू सर्वत्र राजा है ।

३०—हे जाती ! रात्रिदिन रुगी रात्रिस तेरी जीवन रस्ती काट
हैं ।

३१—हे कमलानिधि ! करुणा मून का पान कर ।

३२—अनंत शक्तिमान आत्मा ! नूतन पद के प्रान करने के लिये
व्यपन्नित हुई है वही मार्ग यथावध्य रीति से न ग्रहण कर ।

३३—भेड़िये की तरह स्वप्नरूप दिना । भेड़िया मत बन ।

३४—हान्यादि एवम कौतूहलादि का स्वप्न में भी परिचय
र रख ।

३५—मानादि अवसरों में लेश मात्र भी द्रोह मत रख ।

३६—चौदह रत्नों का यथावध्य रीति से पानन कर ।

३७—चौदह रत्न परिचय के अपेक्ष का त्याग कर ।

३८—पूर्व काल के परिचियों में से एकत्र भी परिचित धर्म
न और मुक्त ध्यान के वृद्धिकर्ता नहीं

३९—एकत्र गुप्त जीवन बना । शक्ति जड़, अंतर चैतन्य दशा
ला बन ।

१४—धर्म की ग्लानि और समाज की दुर्दशा पर दृष्टि रखो। सब सज्जन इकट्ठे हो उसका उद्धार करने के लिये कसर नसो।

वि० ध० हंडेरो (न्याय विजयजी)

चार प्रकार (चार भेद)

धर्म के चार भेद—दान, शील, तप, भावना।

व्रतों के चार भेद—सिंह सिंह; सिंह सियाल, सियाल सिंह, सियाल सियाल।

चार गोले—मकखन का, लाख का, लोहे का, मिट्टी का।

देवता में से आये हुए जीव के चार लक्षण—

उदारचित्त, सुस्वरकंठ, धर्म का रागी, गुरु भक्त।

तिर्यच से आये हुए जीव के चार लक्षण—

अविनयी, अंसतोषी, कपटी, मूर्ख।

मनुष्य से आये हुए जीव के ४ लक्षणः—

विनयी, निर्लोभी, धर्म प्रेमी, सब को प्रिय।

नारकी से आये हुए जीव के ४ लक्षणः—

क्रोधी, मूर्ख, दुष्ट स्वभावी, अन्यायी।

देवता ४ कारण से, यहां नहीं आते—

कामभोग में तल्लीन रहने से; नाटक देखने में तल्लीन रहने से, ५०० योजन तक गंध जाने से, नवीन प्रेम जुड़ने से।

देवता ४ कारण से यहां आते हैं—गुरु को नमस्कार करने, तपश्चर्या की महिमा बढ़ाने, तीर्थंकरों के उत्सव करने; वचन प्रदत्त होने से।

वेदनीयकर्म—अग्नि तथा शकर से लिपटी हुई तलवार की र के समान, चाटने से नीटी लगे पर जीम फट जाय ।

मोहनीयकर्म—मदिरा पिये हुए मनुष्य के समान सत्य धर्म खर न पड़ने दे ।

आयुष्यकर्म—हैदराने के समान, चार गति में रोक रखते ।

नामकर्म—विप्रचार के समान, अच्छा, बुरा रूप बनादे ।

गौत्रकर्म—कुंभकार के समान ऊँच नीच कुल में उत्पन्न करे ।

अंतरायकर्म—राजा के मंदारी के समान धर्म ध्यान न ले दे ।

इन्द्रा बाला जीव ४८ निमिष में ८० वरुण जन्म मृत्यु करता है

इन्द्रा बाला जीव ४८ " ६० " " " "

इन्द्रा बाला जीव ४८ " ४० " " " "

संमार्गवेदिकका जीव " २४ " " " "

ह्रीं का जीव मिट्टी में " १२८२४ " " " "

नीं का जीव पानी में " " " " " "

मिं का जीव अग्नि में " १२८२४ " " " "

ह्रुं का जीव वायु में " " " " " "

रीं का जीव हरी में " ३२००० " " " "

दन्तका जीव कंदन्त में " ६५२३६ " " " "

ह्रीं का जीव मिट्टी में अतल्ल्याते वर्ष तक रहता है ।

नीं का जीव पानी में " " " "

मिं का जीव अग्नि में " " " "

ह्रुं का जीव वायु में " " " "

५—दुःख का पानी जब तक साफ़ न हो तब तक घड़े में
 दूध पानी नहीं आसकता और न आने की आशा हो रहती
 वैसा ही जब तक साधु समुदाय नहीं सुधरेगा तब तक उन समु-
 दायों के सुधरने की आशा दीन काल में भी फलानूत नहीं हो सकती।
 गोर को प्रयत्न करने आता व समुदाय का उद्धार करना या, इस
 ए १२॥ वर्ष तक मौन रहकर घोर तपस्या की थी। वर्तमान के
 धुशांतोरिक संघर्ष की कमी के कारण उनकी शक्ति न हो पा
 कर नहीं, तपस्या न हो सके तो न सही सिर्फ़ करने २ भावों
 ही जो असाधारण परिवर्तन हुआ है, उसे उच्च कोटि में ले
 ये तो हर एक समुदाय पर उन मुनि की वैराग्य की गहरी छाप
 ! और वे भाव कमरा जीवन में घटावे दो साधु समाज और
 समाज का उद्धार हो जाय ।

आत्मबोध (भाग दूसरा)

अनुक्रमणिका ।

विषय	पृष्ठ	लेखक
१—आदर्शदान	१	वीर पुत्र
२—आदर्श पत्र	२	"
३—पुष्टिपा भावक	२-३	"
४—अरुण भावक	३-४	"
५—प्रभव चेत	४	"
६—नाथ सेवार्थे महाराज	४	"
७—अनन्त वचन	५	"
८—गुरु वार्ता	५-६	"
९—दो महारथ	६	"
१०—आदर्श जैन	७-८	मं० वीरपुत्र
११—आदर्श जैन	९-१३	मं० बंजी
१२—वचनान्त	१२-१५	मं० बा० मो० शाह
१३—वचनान्त	१६	मं० महाराज
१४—अनन्त महारथ	१७-२२	मं० वीरपुत्र
१५—अनन्त महारथ को	२३-२५	मं० बंजी
१६—अनन्त महारथ को	२६-२७	"
१७—अनन्त महारथ को	२८-२९	"

आत्मबोध (भाग दूसरा)

अनुक्रमणिका ।

विषय	पृष्ठ	लेखक
१—आदर्शदान	१	बीर पुत्र
२—आदर्श पत्र	२	"
३—पुणिया श्रावक	२-३	"
४—अरण्यक श्रावक	३-४	"
५—प्रभव चोर	४	"
६—माया सेंवारते महाराजा	४	"
७—अमृत वचन	५	"
८—गुरु घाणी	५-६	"
९—दो महावीर	६	"
१०—आदर्श जैन	७-८	सं० बीर पुत्र
११—आदर्श जैन	९-१३	श्री० बंसी
१२—वचनामृत	१२-१५	श्री० वा० मो० शाह
१३—वचनामृत	१६	श्री० पाठीवार
१४—अल्पारम्भ महारंभ	१७-२२	सं० बीरपुत्र
१५—हिंसाजन्य अपराधों को सजाएँ	२४-२५	पी० मो०
१६—भूत के अपराध की सजाएँ	२४-२५	
१७—बोरी के अपराध की सजा	२५-२६	

श्रीआत्म-बोध

दूसरा भाग

आदर्श दान ।

गंगा नदी जैसे सफाई से बहने वाले हाथ ।
साफ (नगने वाला) धर जल, पहरा लाय ।
परन्तु निर्मल भाव से अनन्य करवा हो रहे ।
कुदरे के भरदार को पल ना नें गली कर दे ।
अन्दर विश्वास जो छूटा ।
हिमालय से तो नद न बरने बहने हो रहते हैं ।
मैं वैसा न बनूँ तो
मेरी लक्ष्मी गंगा बात छेनी ।
इधर भट्ट और उधर भी भट्ट हो जायेगा ।
तुम्हो के बल्बारा के लिए दान नहीं करे ।
दान करे धरने स्वार्थ के लिए ।

अपनी आय से समाज सेवा करें ।
 नित्य प्रति एक स्वधर्मा को जिमाऊँ ।
 गृहलक्ष्मी की अनुमति लेकर उसे सहभागिनी बनाऊँ ।
 कृपालु देव, दो पैर पालने ही की सामग्री है ।
 सरल तथा सरस एक उपाय है ।
 मैं तरश्चर्या करूँ ।
 ना, मुझे भी तो लाभ लेने दो ।
 अपन दोनों दरावर दान करें ।
 नित्य एक धन्युष बहिन को अन्न विद्या आदि आवश्यक दान दे
 समाज सेवा करें जो आत्म-सेवा है ।
 ऋण मुक्त होने को ।

अरणाक श्रावक

अपने खर्च से जिसकी इच्छा हो उसे ।
 समुद्र यात्रा कराता है ।
 मध्य समुद्र में जहाज पहुँचता है ।
 आकाश में अचानक गड़गड़ाहट
 और बिजली चमकती है ।
 जहाज आकाश पाताल को छुँह करता है ।
 सश जिन्दगी की आशा छोड़ देते हैं ।
 इष्ट देव की आराधना सच्चे हृदय से होती है ।
 देववाणी होती है ।
 अरणाक अपना धर्म छोड़ो तो शान्ति हो ।

अमृत-वचन

जहां जरूरत हो वहीं बपकते हैं ।

अनमोल मोता गिरते हैं ।

कभी किसी को प्रहार मालूम नहीं पड़ता ।

सत्य, प्रिय रोचक और पाषक ।

विवेक पूर्वक विचार के स्व पर हितकारी वचन जैनी उच्चार लुकरे ।

गुरु-वाणी

गाय आंगालती है ।

फेन के भाग से दूध बनाती है ।

बच्चे से दूटे तक को पिलाती है ।

ना के दुग्ध पान के समान पध्य बनाती है ।

घोरे २ रुपयान्तर होकर दही और घी का रूप देने ।

खुद पुष्ट और संसार को पुष्ट बनावे ।

X

X

X

जैन को तलवार दुपारी ।

जाँटना जाने, साथ में हारने की भी मुक्ति जाने ।

मारना जाने, साथ में मार खाने की कला जाने ।

जाँतने से भी अधिक तीव्र सुखी जीते जाने में काम में लावे ।

जैन तलवार जैसा तेज ।

साथ ही कमल जैसा नरन ।

गिरिराज जैसा बड़ा ।

साथ ही खलु जैसा मूझ ।

बजू जैसा बठिन ।

आदर्श जैन

विश्व के गिरितल जैसा है ।
 खलेटी में शान्ति,
 घोटी पर सुक्ति है ।
 दण्डा को दमकती नलवार मममता है ।
 मोक्ष-मार्ग का मेघर है ।
 इसमें दो पाँचों हैं ज्ञान और क्रिया
 उनमें मोक्ष को पहुँच मबता है ।
 पाप का फल देने बिना पुण्य करता है ।
 मोक्ष से भी मनुष्य जन्म को मँहगा सममता है ।
 जैन के दोनों बाजू प्रकाश है ।
 विषयी के ज्ञान और पीढ़े दोनों ओर अंधकार है ।
 ज्ञान को मोक्ष को दुर्ज्जी का स्मू समनं ।
 दूसरे ईद का जयाप पदर से देने हैं ।
 जैन साक्षर सम्मान से जयाप देता है ।
 दुर्ज्जादि को दुरमन नहीं परन्तु अनुभव सिराने वाले ज्ञ-
 ारी गुरु सममता है ।
 मनुष्य को भयंकर लहरे जैन गिरितल को ढोड़ नहीं मबती ।
 वासना से शान्ति का स्वभाव सममता है ।
 अपने को बर्जनाला के सट्या गुरु का विद्वान
 करता है ।

आध्यात्मिक जीवन का यह समुद्र है ।
 सूर्य के ऊपर चंद्र की गहरी शोवत्तता है ।
 सूर्य जैसा तेजस्वी जगमगाहट हो ।
 आंखों में वीरता का पानी झनक रहा हो ।
 जीवन पर ब्रह्मचर्य का निराला पहरा रहा हो ।
 चेहरे में अमृत मरा हो ।
 जिससे पों-पीं कर जगत् विशेष प्यासा बने ।
 मैत्री, प्रमोद, कइया, और माध्याम्य भावना को रेशा
 ॥ लहरे लेती हो ।
 सुरीलाता के भार से मचें नम रही हो ।
 जीम की मीठास से पत्थर भी पिघल जाय ।
 जैन के जीवन में अद्विग धैर्य और असंख्य शान्ति हो ।
 स्नेहमय नेत्रों में से विश्वप्रेम की नदी बहे ।
 जैन बोले थोड़ा किन्तु बहुत मीठा ।
 जैमे मुँह में से अमृत गिरा रहा हो ।
 शोका वचनामृत का प्यासा बना हो रहे ।
 मधुर वचन से सब बरा होवे ।
 जैन गहरा ऊँडा है, कभी दूनकता नहीं है ।
 जैन के पैर गिरे वहाँ कल्याण छा जाय ।
 शब्द गिरे वहाँ शान्ति छा जाय ।
 जैन के सद्वास से अजीब शान्ति मिलती है ।
 जैन प्रेम करता है, मोह को समझता ही नहीं है ।
 जैन के दम्पति घरे में विलास की गंध नहीं है ।
 जैन मर्रा जागृत है ।

का और संप का उपदेश कावरन का, वैसे संप्रदाय, हिन्दू
 चेत का मोह छुटे बिना मुनि का उपदेश निस्तार है।

२०—मछली की घात पारधी से बढ़ी मछलियों
 करती हैं। वैसे अन्य धर्मों से बढ़ी प्रेमी साधु, और
 जैन धर्म का उपास नारा करने हैं।

२१—इस भव में भूतकाज की खेती को लाट रहे हैं
 वर्तमान में भविष्य के लिये बीज बो रहे हो।

२२—नाटककार राजमुगट पहिनने से राज्य
 अधिकारी नहीं हैं। वैसे मुनिपने का नाम धरने वाले
 मागी नहीं हैं।

२३—ईसाईयों ने भारत में धर्म प्रचार के लिये—
 मुक्ति कीर्तन नाम की संस्थाएँ, १८७७—पादरी धर्मगुरु, १८७७
 होस्टर्म, ४०० सफास्यने, ४३ छापागाने, ५५ अन्तर
 कोजेजे ६१० मूल, १७९ उगोगशाचार्य, ५८०४४ विचार
 अण्णारक विद्यालय, भोमन जैतियों आपने आपके
 लिए क्या कुछ किया है ?

२४—जैसे हिन्दू और मुसलमानों ने आपस में
 स्वायत्त गुमाया वैसे श्वेताम्बर दिगम्बरा ने मणि के बिना
 स्वायत्त साधुओं ने सम्प्रदाय के लिये आज जैन धर्म को
 सा बना रक्खा है।

२५—जैसे कचहरी, कानून, और वकील की स्वायत्त
 के लिए हुई, आज हमनी हों ज्यादा अशान्ति और कलह
 रहे हैं वैसे, सम्प्रदाय, कर्म, मर्यादा, और आचार्य के
 निर्मित बन रहे हैं।

२६—कोर्ट मनुष्य विकारा के लिये विघ्न मूत है वैसे ही सम्प्रदाय धर्म-धेन में विघ्न मूत ।

२७—वर्तमान राज्य और धर्म संगठन का शिर नीचे और पैर ऊंचे है । कल्प और मर्यादा जैसे मानूली विषय के ऊपर विशेष लक्ष देते हैं । समकित और वास्तव्य भाव तथा व्रतादि के लिये कुछ परवा भी नहीं करते हैं और दृषण को भूषण रूप समझ रहे हैं ।

२८—तामसी धर्म अनून सिखाता है, तब सात्विक धर्म गन ग्याना सिखाता है और जैन धर्म के आचाये ने भी अनूनसिखाना शुरू किया है इसीसे धर्म के मगड़े हो रहे हैं ।

२९—दरियाई पानी उन्नति के शिखर पर बढ़ने वाला होता है, तब बराल रूप से भस्म होकर घादल रूप देह धारी बन कर नुसलधार बरसता है वैसे पुराने रीतिरिवाज नारा हाकर नये जन्म धारण करते हैं । शिथिलाचारी यतियों के बाद मोराराह का जन्म हुआ । अब नये बीर की अत्यन्त आवश्यकता है ।

३०—कष्ट देनेवाले को कष्ट देकर लुरा होने का यह जड़ समाना है तब पूर्व में झमा देकर लुरा होने का जमाना था ।

३१—कष्ट देने वाले को कष्ट देने से अपने कष्ट में कमी होती है । परन्तु सदा दुःखों की दृष्टि होती है ।

३२—दूर लेने से नुकसान निरर्थ दो मनुष्यों को नहीं होता किन्तु मनस जगन् को नुकसान होता है । यह समझ आज के जमाने में प्रायः अतंभव सी है ।

३३—धर्म मरजियात है । न कि फरजियात । नुदमकि मरजियात नकि फरजियात ।

३४—भ्यामी भद्रानदजी की प्रतिष्ठा-गुह्यगुह्य की
होने वहां तक पर में पैर न रखना । दे कोई जैन कीर !

३५—दूमरे के दोष देगना यह मुद के दोष झरु
के समान है ।

३६—शुद्धि यह भीषार स्वदग है ।

श्रीयुत अमृतलाल पाढीयार कृत

१—मन की हड़कवा, शरीर कां सव, पुष्टि की रंगे
गरदन को प्लेग की गाठ हाथ और पैर में लकवे की
आज के भीमनों की लगी है ।

२—एक रोटी का दुकवा खाने वाला भी जगत में
भारी है ।

३—लीलोती के त्याग करने वाले ने क्या अनौति,
और कूड़ कपट के त्याग किये हैं ?

४—अष्टमी चतुर्दशी के उपवास करने वाले ने
विवाह, वृद्ध-विवाह, बेजोड़ विवाह, कन्या-वक्रय, वर विक्रय,
सुगते में ओमने का त्याग किया है ?

५—सबत्सरी से समा के साथ क्या मतोंप की
की है ?

६—प्रभुस्तुति करनेवालों ने क्या विकथा निन्दा का
किया है ?

अल्प आरम्भ व महा आरम्भ

१—हाथ में अग्नि लेने वाले को कौनसा कर्म ?

२—वेदनीय कर्म क्या है ?

३—वेदनीय कर्म के लिये किसे कहते हैं ?

४—वेदनीय से दूर रहने का कर्म क्या है ?

५—रेशम पहनने वाला दुर्गा का कर्म क्या है ?

६—पाँटे पर सोने वाला दुर्गा का कर्म क्या है ?

७—श्री में मोह करने का कर्म क्या है ?

८—मोती का हार पहनने का कर्म क्या है ?

९—मोती कैसे बनते हैं ?

१०—कुल सुपने का कर्म क्या है ?

११—अपने हाथ में रत्न रखने का कर्म क्या है ?

१२—हाथ में रत्न रखने का कर्म क्या है ?

१३—हजार कोमल रत्न का कर्म क्या है ?

१४—एक मोल और मोटा रत्न का कर्म क्या है ?

१५—एक रत्न रखने का कर्म क्या है ?

१६—एक रत्न रखने का कर्म क्या है ?

१७—एक रत्न रखने का कर्म क्या है ?

१८—एक रत्न रखने का कर्म क्या है ?

२९—सैबड़ों गायें पालने में ज्यादा पाप या एक धारवाजाल
दही दूध दो खाने में ?

३०—भर भर मिठाई यवनापूर्वक खाने में ज्यादा पाप या
पाप भर मोल खाने में ?

३१—क्या बहराजिन्त लान्गों को सम्पत्ति में ज्यादा पाप या
अन्धाय बहराजिन्त एक चौकी में ?

३२—लान्गों बारिदल की चूड़ियां पहिने वाली को अधिक
पाप या एक हाथी दांत की चूड़ी पहिने में ?

३३—घर पर रसोई बनाकर जीमने वाला पारी या कुक्क
में जीमने वाला ?

३४—नौ विवाह में दो जीमने वाला पारी या एक नोकल
में दो खाने वाला ?

३५—रमाई को नौ पैसकर खाने लेने खाना पारी या बेंटी
को पैसकर खाने लेने खाना ?

३६—नौ बेंटी को न पाने वाला मुर्य या एक घेंट को ?

३७—भयंकर दोमारी में मंदन की रसा नहीं पाने वाला
मुर्य या सन्तान को विवाह नही देने वाला ?

३८—बेंटी को लान खाने की दरमिन् देनेवाला खान कि
शिवा देनेवाला खान ?

३९—कूत का कूत खाने वाला घरवाले कि एकदम
या रसादिदम खान में जीमने वाला ?

४०—मंदन से खानेबेग खाने वाला पारी कि खाना
खाने वाला ?

४१—पुत्र को कर्जदार बनाने वाला पापों कि
रखने वाला ?

४२—संतान को विलासी व विषयी बनाने वाले
बहर देते हैं ।

४३—धर्म रक्षा के हेतु धर्म कलह करनेवाले धर्म का
जड़ काटने वाले हैं । (आज ऐसे दोषी बहुत हैं) ।

४४—सब दुःख और पापों का मूल कारण अज्ञान है ।

४५—सूर्योदय से सब अन्धकार दूर होता है । एसी
सत्यज्ञान से सब दोष और दुःख दूर होकर सकल
प्राप्ति होती है ।

उपसंहार

पाप से जीव मात्र बरते हैं, कारण पाप का फल दुःख ।
जैनशास्त्र में पाप दूसरा नाम है आरम्भ । आरम्भ
थोड़ा पाप और और महारम्भ अर्थात् बहुत पाप । पाप
और महापाप की व्याख्या ठीक न समझने से आज
व त्यागी लाभ की जगह हानियां उठा रहे हैं । जैसे किताबों
सोसं जवाहिर खरीदनेवाला ठगता जाता है ।

शास्त्र वचनों को समझने के लिए सद्गुरु की बातें
जल्दतर बतलाई गई है । आज इसका पालन थोड़ा होने से
के निर्णय में अन्धकार आ गया है । जैन जनता प्रचलित
अथवा स्वल्प पाप को बुरा मानती है, परन्तु परोक्ष पाप
प्रायः मूल रही है । जैसे अल्पज्ञ जीव लगने वाली लकड़ी

निर पो दुःख का कारण मानता है, कि जब विवेकी मनुष्य इसके असली कारणों को ढूँढ़ता है और उससे बचता है।

जैनों का ध्येय जीवदया होते हुए भी हिंसा बढ़ रही है, जो मोड़ी विवेक दृष्टि लगाकर विचार करेंगे तो अनेक दोष स्पष्ट नाट्यम पड़ जायेंगे। शास्त्रकारों ने हिंसा के २७ प्रकार बहे हैं। मन, वचन, काया से पाप करना, कराना व अनुमोदन करना; भूल, वर्तमान और भविष्य काल इन २७ प्रकारों से हिंसा का पूर्ण त्याग वह अहिंसा है।

देखो ! श्री वनामक दसांग मूत्र में सब आचकों ने केवल सूत के दो घन्ने रखे हैं । घर का घा और केवल एक जाति की पर में दोनों हुई मिटाई रखी है । नाम गोल घर जीवन भर के लिए फेंक दो घात साफ रखे हैं । अब मुनियों को देखो, कम छोटे घड़े काम निल हाथों से हो परने की आता है किन्तु मैं कराने का बनाई क्यों है ? कारण हाथों से, विवेक ने काम निल होता है व स्वावलम्बी बन रहा है । काम निलने की आवश्यकता अबिवेकी नौकरों ने काम लेने में दूरागें हुए, कम कर रहे हैं ।

मौल पौ पीउ लेकर जो दान देते हैं उसे अपने अपने
के हाथ पाप करने में मरदूत होते हैं । यह सत्य है कि
है कि "एक हरीबा बटन से बने बालू" की भाँति
बालू बालूओं के हाथ मरदूत होते हैं । यह सत्य
सिद्ध होती है कि अन्तरात्मा के द्वारा जो
दृष्टि से बरला चाहिए । यह सत्य है कि
आर्यवाद रूप सत्यज्ञान के द्वारा जो
लेनी चाहिए कि जो बालू से बने बालू

१—जैसे मनुष्य के शरीर का पात्र भरता है वैसे ही स्त्री
पूरे खाने आपने आप भर जाती है ।

२—जैसे मनुष्य के पाँव या तला धिक्ता और बढ़ता है वैसे
ही पत्नी (पृथ्वी) भी रोजाना धिक्ती और बढ़ती है ।

३—जिस तरह बालक बढ़ता है वैसे पर्वत भी धीरे-धीरे बढ़ते
मादम होते हैं ।

४—लोह चुंबक लोह को मीचता है; यह बात उसकी
वैकल्य शक्ति को प्रकट करता है । मनुष्य को तो लोह को लेने के
लिए उसके पास जाना पड़ता है जब कि लोह चुंबक तो लोह को
आपने आप मीच लेता है ।

५—पथरी का रंग हों जाता है तो बताया जाता है कि
गुआराय में मयेत कंवर बढ़ता है ।

६—मच्छी के पेट में रहा हुआ मोती भी एक प्रकार का
पत्थर होता है और यह भी बढ़ता है ।

७—मनुष्य के शरीर में हड्डी होती है लेकिन उसमें जीव
होता है जसी प्रकार पत्थर में भी होता है ।

सुमति—जानीमित्र पृथ्वी काय में जीव है, यह मानित
करने के लिए आपने सर्व अनुमान में जीव प्रमाण बताया । अब
पत्थर-काय के लिए कोई प्रमाण बताने की कृपा करें ।

जयंत -- प्रिय मित्र मुन । अगर (पानी) काय जीव की निधि
के लिए वे प्रमाण हैं

१—जिस तरह बंदी में रहे हुए पक्षी पक्षरों के दृष्टिकोण
पक्षी का निरह होता है वैसे ही पत्थरी पत्थरों और जीवों का निरह
है

छ काय (भाग ३)

सुमति—शान्ति बन्धु ! पृथ्वी और अपकाय में जीव हैं, यह बात आपने ऐसी सरल रीति से समझा दी है कि यह मेरे दिल में बहुत जल्दी उतर गई, परन्तु भाई ! मुझे नाक करना, अग्नि से ही अपने लोग जल मरते हैं ऐसे स्थान में जीव कैसे हो सकते हैं ? अगर ऐसा है तो तेजकाय में जीवों की सिद्धि करके बताने की कृपा करें।

जयंत—हां भाई ! इस में शंका की कोई बात नहीं। अग्नि भी फिर जीवों का पिण्ड है। अग्नि आसोपास बिना नहीं जी सकती, इसके कारण सुनः—

१—जैसे पुतार में गर्म हुए शरीर में जीव रह सकता है वैसे ही गर्म आग में भी जीव रह सकते हैं।

२—जैसे मृत्यु होने पर प्राणी का शरीर ठंडा पड़ जाता है वैसे ही अग्नि बुझने से (जीवों के मरने से) ठंडी पड़ती है।

३—जैसे आगिए के शरीर में प्रकाश है वैसे ही अग्नि बाय जीवों में प्रकाश होता है।

४—जैसे मनुष्य चलता है वैसे अग्नि भी चलती है (आग जो धर आगे बढ़ती है)।

५—जैसे प्राणी नात्र हवा में जाते हैं वैसे ही अग्नि

६—जैसे हमें हुए लहने यदि सुख दक दिर जाय तो सुख कर को जाने हैं और उपाय हो और हवा मिलनी रहे तो सुख समस्त तब मिलन रह सकते हैं; अन्त में अग्नि के लोप करने पर राग हो ॥

भी हवा में जीती है (बिना हवा के जलती हुई कन दीपक बुझ जाता है ।)

६—जैसे मनुष्य अक्सिजन (प्राण वायु) का कार्बन (विष वायु) बाहिर निकालता है वैसे ही अक्सिजन लेकर कार्बन बाहिर निकालती है ।

७—कोई जोव अग्नि की मुराक लेकर जीते हैं भरतपुर के पास एक गाँव में एक बख्श पास के बरत खाता है ।

मारवाड़ के रेगिस्तान में बिना पानी सकल गर्मी में घूरे जीते हैं ।

चूने की भट्टी के घूरे अग्नि हो में जीते हैं । छिन्निक को भी अग्नि में पड़ने से नवजीवन मिलता है । कप, आदि वृक्ष भीष्म श्रतु में) सकल तार में हो फलते-फूलते ।

जिस प्रकार दूसरे जीव गर्मी के बढ़ने पर तथा गर्मी सकते हैं उसी प्रकार अग्नि काय के जीव अग्नि में रह सकते ।

सुमति—ठीक है भाई । अब वायुकाय में जीव हैं सिद्धि कृपा कर बतानी चाहिये ।

जयंत—वायुकाय (हवा पवन) भी जीवों का है और यह बात प्रत्यक्ष सिद्ध है ।

१—हवा हजारों कोस चल सकती है और वह (हवाई अड्डाज-विमान) को चलने की गति दे सकती है ।

२—हवा पशों दिराओं में स्वतंत्र वेग से पहुँच और बड़े वृक्ष, महलाओं को उखाड़ गिरा सकती है ।

३—हवा अपना रूप छोड़ने से हवा की रूढ़ि में लीना कर लेती है ।

४—हवा के प्रवेश स्थान में वनस्पति उड़ने हुए जीव हैं, वह विज्ञान ने सिद्ध कर दिया है । मृद के अग्र भाग जितनी जल में हवाओं जीव घैट मरते हैं । उन्हे वनस्पति बढ़ते हैं । गगन में तो पहिले वायुवाय में जीव बसाए है और उन जीवों से हवा बनने की के लिए वायु लोग मुँह पर मुँहपत्ति रखने हैं और इस प्रकार वायुवाय की रक्षा करने हैं । भावकों के लिए भी सामाजिक, वैषय आदि धार्मिक प्रिया करने समय तथा सभी प्रकार वायुओं से साथ बात चाल करते वन भी मुँहपत्ति रखने की आज्ञा है ।

४ काय (भाग ४)

सुमति—मेरी वनस्पति ! आपने अपार कृपा करके पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु वाय में रहे हुए जीवों की सिद्धि कर दिखाई । अब कृपा करके वनस्पति में रहे हुए जीवों की सिद्धि कर बतावें तो मैं आभारी होऊँगा ।

ज्येष्ठ—ज्ञान मेरी भाई, पृथ्वी आदि स्थावर जीवों आदि के सम्बन्ध की मारी दलों ने आप समझ गए हैं तो वनस्पति के जीवों की सिद्धि समझने में देर नहीं लगेगी, क्योंकि आज विज्ञान में निपुण मर जगदीशचंद्र बोस जैनों ने अनेक सभाएँ कर के यह आग और पर सिद्ध कर दिया है कि वनस्पति भी जीवों का निरुद्ध है ।

सुन—१—मनुष्य जिस तरह माता के गर्भ में पैदा होता है

—पञ्चमः सर्गः ।

१०—एकत्रयः पञ्चमः शिवायः शिवायः शिवायः शिवायः शिवायः
शिवः शिवः शिवः शिवः शिवः

“सर्वज्ञः सर्वशक्तिः सर्वशक्तिः सर्वशक्तिः”

"सत्यमेव जयते" : सत्य ही जीत आहे !

"ל'יום יצאנו מן הארץ" - יצאנו מן הארץ

“मृत्यु में सुख है” दादा ने हमें हमेशा जिक्र किया। हमें
पाठकों के विचारों में यह आया है कि यमलोक में सुख है।

एक काल में हो, सोन, कागज का रस लीजिए बावें लीजें
 का मकानों में हो। इसमें लीजें है का-विषय काव है।

पौंडे, लम, लंज, शम नीम को दो इन्डियो लू, लीम
पौंडे, मसौरी को नीम, मलली, मल्ल, बिल, शदि को पद
मल मल्ल, पद, पदियों को पद इन्डियो लीमो है ।

उपवास और अमेरिकन डॉक्टर्स

(उपमान चिह्नित्वा मे मे)

(१) घट पूर्ण होने से भोजन से स्वयं अमयि होती है, फिर भी अमयि कोर आधार घटनी और नसाला के निमित्त से उपादा भोजन करके दाट लगाने हैं । यह विष समान शक्ति करता है ।

(२) शरीर नुद मरुतष वस्तुसो म्यान नहीं देता है, मल मूत्र सैद्य पसीना आदि को उन्नत होते ही फेंक देता है।

(३) बारी बारण्डे, बंध करके सोने के बाद बारी सोने से शरदी लगती है किन्तु हवा में सोने से शरदी नहीं लगती है। ज्यादा सोजने करने से मन मद्धने से दिमाग में दर्द व रुनेवम आदि होते हैं ।

(४) शरीर के लिये हवा, बहुत कीमती पदार्थ है हवा से शरीर को कभी नुकसान नहीं होता है ।

(५) शरीर में अन्न जलादि के सिवाय सर्व वस्तु विष काम करती हैं ।

(६) शरीर अपने भीतर रात्रि दिन भाडु देकर रोग को बाहिर निकालता है ।

(७) उपवास (लंपन) करने से अटरामि रोग को दूर करता है ।

(८) घुछार आने के पहिले मुखार की दवा लेना यह निष सने विष को शरीर में बढ़ाने के समान है ।

(९) ऐसा एक भी रोग नहीं है जो उपवास (लंपन) से न मिट सके ।

(१०) स्वाभाविक मृत्यु से दवाई से ज्यादा मृत्यु होती है ।

(११) एक दवाई शरीर में नये बीस रोग पैदा करती है ।

(१२) अनुभववादी डाक्टरों को दवाई का विधान नहीं है ।

(१३) बिना अनुभव वाले डाक्टर दवाई का विधान करने दे ।

(१४) दुनिया को निरोगी बनाने का बड़े बड़े डाक्टरों ने एक राज बूझा है । वह यह है कि दवाइयों को जमान में गारंटे

- (३३) शरीर में विष साफ़ हो नहीं पाता है ।
- (३४) शरीर में रोग भीषण हो जाता है किन्तु उप-
चार में रोग उन्मूलन हो जाता है ।
- (३५) उपचार करने वाले रोगी को सुहृद में और लक्ष्मण पर
विश्वास होना चाहिए ।
- (३६) शरीर में जो रोग कार्य करता है वही काम दूसरे
कराये है ।
- (३७) शरीर में रोग कार्य करने हैं कि दूसरे से रोगी
नहीं बनते हैं ।
- (३८) दूसरे न देती वह रोगी पर महान् उपचार करने
समान है । यद्यपि शरीर में पथ्य हवा-भावना आदि परम
नकारक हैं ।
- (३९) शरीर में रोग कार्य करने हैं शरीर में रोग और रोगी
नहीं बनते हैं ।
- (४०) शरीर में रोग कार्य करने हैं शरीर में रोग और रोगी
नहीं बनते हैं ।
- (४१) रोगी के शरीर में रोग न आने से रोग विषास
नहीं बनता है ।
- (४२) रोगी को निश्चयी समझे वही सच्चा शरीर है ।
- (४३) शरीर, पर शरीर को आराम देते हो वैसे उपचार
नहीं कर सकते हैं ।
- (४४) शरीर में रोग कार्य करने हैं शरीर में रोग और रोगी
नहीं बनते हैं ।

रात्रि को देखते रहते हैं कि शायद यह गुन ठीक हो
 स्या न ले ।

(४५) तीन दिन के बाद उपवास में कठिनाई
 नहीं पड़ती है ।

(४६) दूदी हड्डी का जुड़ना और बन्दूक की गोली को
 का भी उपवास से आराम पहुँचता है ।

(४७) पशु पक्षी भी रोगी होने के बाद तुरन्त आराम
 न हो वहाँ तक खाना पीना छोड़ देते हैं ।

(४८) कफ, पित्त और वायु में बधघट होने से
 होता है ।

(४९) वायु का सात दिन में, पित्त का दस दिन में,
 का रोग बारह दिन में अन्न न लेने से (उपवास करने से)
 आराम होता है और रोग नारा हो जाता है ।

(५०) दवाई से थककर अमेरिकन डॉक्टरों ने उपवास
 अनादि सिद्ध दवाई शुरू की है ।

(५१) जो दवाई नहीं करता है वह मत्र रोगियों से
 सुखी है ।

(५२) भूख न लगना रोग नहीं है किन्तु जठराग्नि
 नोटिस है कि पेट में माल भरा हुआ है । नये भोजन के
 स्थान नहीं है । एकध उपवास कीजिएगा ।

(५३) उपवास करने से शरीर दुखता है, चक्कर आते हैं
 मुँह का स्वाद बिगड़ता है । इसका प्रयोजन यह है कि शरीर में
 रोग निकल रहा है ।

काव्य विलास

श्री परमात्म छत्तीसी

दोहे

ॐ परमात्मा, परम ज्योति जगदीश ।
 परम भाव हर आन के, प्रणमत हं नमिशीन ॥१॥
 एक ज्यों चेतन द्रव्य है, जिनके तीन प्रकार ।
 अहिरानम अन्नर तथा, परमात्म पद नार ॥२॥
 अहिरानम उसको कहे, लखें न आत्म स्वरूप ।
 अन्न रहे परद्रव्य में, मिथ्यावंत अनूप ॥३॥
 अन्नर-आत्म जीव तो, सम्यग्दृष्टी होय ।
 तौथे अन्न पुनि पारवें, गुणथानक लो सोय ॥४॥
 परमात्म पद प्राप्तको, प्रकट्यो शुद्ध स्वभाव ।
 लोकालोक प्रमान सय, भूलकै जिनमें आय ॥५॥
 अहिरानमा स्वभाव तज, अन्नरानमा होय ।
 परमात्म पद भजत है, परमात्म हैं सोय ॥६॥
 परमात्म तो आत्मा, और न दूजो कोय ।
 परमात्म को ध्यावने, यह परमात्म होय ॥७॥
 परमात्म है, परम ज्योति जगदीश ।
 ज्योति अलख तोइ ईश ॥८॥

॥ मन विजय के दोहे ॥

दर्शन ज्ञान चारित्र्य जिहं, सुख अनंत प्रतिभास ।
 चंदन हो उन देव का, मन धर परम हुलास ॥१॥
 मन से चंदन कीजिये, मनसे धरिये ध्यान ।
 मन से आत्मा नश्य को, लखिये सिद्ध समान ॥२॥
 मन खोजत है प्राय को, मन नय करे विचार ।
 मन चिन आत्मा नश्य वा, कौन करे निरधार ॥३॥
 मन सम खोजी जगत् में, और दूसरो कौन ?
 खोज ग्रह शिवनाथ को, लहे सुखन को मोह ॥४॥
 जो मन मुलहे आपको सो मुझे नय मांग ।
 जो डलहे संसार को, सो नय मुझे कहें ॥५॥
 मत अवश्य अनुभव उभय, मनको चार प्रहर
 दाय भुक्त संसार को, दो पहरे नय ॥६॥
 जो मन लागे प्राय को, सो मुख होत प्रहार
 जो भयको शम भाव में, सो हृत् नय प्रहार ॥७॥
 मन से पली न दूसरो, देखो नय प्रहार
 तीन लोक में विरत हो, नय नय प्रहार ॥८॥
 मन दासों का दास है, नय नय प्रहार
 मन नय दासनिर्भर है, नय नय प्रहार ॥९॥
 मन राजा की नय नय, नय नय प्रहार
 रात दिनों दौड़त किं, नय नय प्रहार ॥१०॥

ईश्वर सोही आत्मा, जानि एक है नन ।
 कर्म रहित ईश्वर भये, कर्म नहिन जगजंत ॥१५॥
 जो गुण आत्मद्रव्य के, सो गुण आत्म नाहि ।
 जड़ के जड़ में जानिये, यानें नो भ्रम नाहि ॥१६॥
 दर्शन आदि अनंत गुण, जीव धरें तीन काल ।
 वर्षादिक पुद्गल धरें, प्रकट दोनों की चाल ॥१७॥
 नित्यारथ पथ छोड़ के, लगे मृषा की ओर ।
 नै मृत्यु संसार में, लहै न भव को धोर ॥१८॥
 भैया ईश्वर जो लखे, सो जिय ईश्वर सोय ।
 यों देख्यो सर्वज्ञने, यानें फेर न कोय ॥१९॥

कर्ता अकर्ता के दोहे

कर्मन को कर्ता नहीं, धरना शुद्ध सुभाय ।
 ना ईश्वर के चरन को, बंद शीत नमाय ॥१॥
 जो ईश्वर करना कहें, मुक्ता कहिये कौन ?
 जो करना सो भोगता, यही न्यायको भौन ॥२॥
 दोनों दोष से रहित है, ईश्वर नाको नाम ।
 मन बन्ध शीत नवाय के, कर्म नाहि परिणाम ॥३॥
 कर्मन को कर्ता है वह, जिसको ज्ञान न होय ।
 ईश्वर ज्ञान समूह है, किम कर्ता है सोय ॥४॥
 ज्ञानबंद ज्ञानहि करें, अज्ञानी अ-

रोगादिक पीडित रहै, महा कष्ट जो होय ।
 तब हू मृग्य जीव यह, धर्म न चिन्त कोय ॥२१॥
 मरन समय बिललान है, कोई न लेय यचाय ।
 जाने क्यों क्यों जीजिये, जोर न कह्यु यसाय ॥२२॥
 किर नरभय मिलियो नहीं, कियेहु कोटि उपाय ।
 ताने येगहि येन हू, अहो जगत के राय ॥२३॥
 भैया की यह चीननी, येनन चिनहि धियार ।
 ज्ञान दर्श चरित्र में, आपो लेहु निहार ॥२४॥

प्रशंसन ।

ते ही क्षणिक निमग्न, दयालु कृपि धर्म संभारी ।
 दिन लक्ष्मी दुःख भूषण, मेधावत मया कथन अमृत ॥१॥
 दयालुता दुःख भूषण, लज्जामय मया दुःख भोई नार्हो ।
 अमृतोप हान हिरण्य, मय कथन अमृत मया ॥२॥
 दिन निमग्न मे दयालु ध्यान अमृत संभारी मया ॥
 मया हान दुःख भूषण, मे ध्यान मया लज्जामय ॥३॥
 लक्ष्मी भूषण भोई नार्हो, मया कथन विभूषण अमृत ॥
 दयालुता दुःख भूषण, लक्ष्मी ध्यान लज्जामय ॥४॥
 मया हान दुःख भूषण, मया ध्यान लज्जामय ॥
 लक्ष्मी भूषण भोई नार्हो, मया कथन विभूषण अमृत ॥५॥
 दयालुता दुःख भूषण, लक्ष्मी ध्यान लज्जामय ॥६॥
 मया हान दुःख भूषण, मया ध्यान लज्जामय ॥७॥
 लक्ष्मी भूषण भोई नार्हो, मया कथन विभूषण अमृत ॥८॥
 दयालुता दुःख भूषण, लक्ष्मी ध्यान लज्जामय ॥९॥
 मया हान दुःख भूषण, मया ध्यान लज्जामय ॥१०॥
 लक्ष्मी भूषण भोई नार्हो, मया कथन विभूषण अमृत ॥११॥
 दयालुता दुःख भूषण, लक्ष्मी ध्यान लज्जामय ॥१२॥
 मया हान दुःख भूषण, मया ध्यान लज्जामय ॥१३॥
 लक्ष्मी भूषण भोई नार्हो, मया कथन विभूषण अमृत ॥१४॥
 दयालुता दुःख भूषण, लक्ष्मी ध्यान लज्जामय ॥१५॥
 मया हान दुःख भूषण, मया ध्यान लज्जामय ॥१६॥
 लक्ष्मी भूषण भोई नार्हो, मया कथन विभूषण अमृत ॥१७॥
 दयालुता दुःख भूषण, लक्ष्मी ध्यान लज्जामय ॥१८॥
 मया हान दुःख भूषण, मया ध्यान लज्जामय ॥१९॥
 लक्ष्मी भूषण भोई नार्हो, मया कथन विभूषण अमृत ॥२०॥

मेरी भावना

(जीवन सुधार नित्य पाठ)

जिसने रागद्वेषकामादिक जोते, सब जग जान लिया,
 सब जीवों को मोक्ष मार्ग का, निस्पृह हो उद्देश दिया ।
 युद्ध, शर, जिन, हरि, हर प्रह्ला, या उमको स्वीकृत कहो,
 भक्ति-भाव से मेरित हो यह, चित्त उसी में लीन रहो ॥
 विषयों की आशा नहीं जिनके, साम्य-भाव धन रगत है,
 निज-परके हित-साधनमें जो, निरादिन तन्पर रहते हैं ।
 स्वार्थत्याग की कठिन सपस्या, बिना मंत्र जो करते हैं,
 ऐसे ज्ञानी साधु जगत के, दुख समुद्र को तरते हैं ॥
 रह मदा सत्संग ऊर्ही का, ध्यान उर्ही का निरन्तर रहे,
 उन ही जैसी चर्या में यह चित्त सदा अनुरक्त रहे ।
 नहीं मताऊँ किसी जीव को, गूठ कभी नहीं कहा करूँ,
 पर धन वनित के परत लुमाऊँ, संतोषामृत दिया करूँ ॥
 अस्वकार का भाव न रक्खूँ, नहीं किसी पर क्रोध करूँ,
 देव दुसरो की बढ़ती को, कभी न ।
 रहे भावना ऐसी मेरी, सरल सत्य
 यत्न जहा तक इस जीवन में जीये
 मैत्रीभाव जगत में मेरा सब
 दोन दुर्गा जीवों पर मेरे घर से
 दुर्जन-द्वेष-कुमारगर्तों पर शोभ
 साम्यभाव रक्खूँ मैं उन पर ऐसी

*विषय—“बनिना” की जगह “भगना

बतझारं गरं हे । किन्तु मनुष्यत्व की दुर्लभता बतझारं गरं है । मनुष्यमय पाजाना एक बात है और मनुष्यत्व प्राप्त कर लेना दूसरी बात है । जानो दुर् दुनियाँ में मनुष्य तो फरीष १४ अर्ध है परंतु मनुष्यत्ववाले मनुष्यों की गिनती अगर की जाय तो वह अंगुलियों पर की जा सकेगी । इसी लिये शास्त्र में मनुष्यमय की दुर्लभता की अपेक्षा मनुष्यत्व की दुर्लभता का कथन किया है । यह बात बड़े मार्के की है ।

सच है, मनुष्यमय पाजाने पर भी अगर मनुष्यत्व प्राप्त न किया तो मनुष्यजीवन किस काम का ? परंतु यहाँ पर प्रश्न यह है कि मनुष्यत्व आतेर है क्या ? जिसे न पाने पर मनुष्य-जन्म ही व्यर्थ माना जाता है ।

मनुष्यमय मिलने पर मनुष्य का आकार मिलता है परंतु मनुष्यत्व के लिये आकार की नहीं किन्तु गुणों की आवश्यकता है । एक कवि का कहना है कि जब तक गुणियों के भीतर मनुष्य की गणना न हो तब तक उसकी माता पुत्रवती ही नहीं है ।

‘गुणिष्णुगणनारंभे न पतति कटिनी सुसंभ्रमाघरः ।

तेनाभ्या यदि सुतिनी वद दन्व्या कीदृशी नाम ॥ १ ॥

अर्थात् गुणी लोगों की गिनती करते समय जिसके नाम पर अंगुली न रखी गई अर्थात् जिसका नाम न लिखा गया उस पुत्र से अगर कोई माता पुत्रवती कहलावे तो कहिये दन्व्या किसे कहेंगे ? ।

इससे साफ़ मान्य होता है कि अष्ट गुणों को धारण करनेवाला ही मनुष्य है । बाकी तो मनुष्य नहीं किन्तु मनुष्याधार प्राणी है ।

अर्थात् आहार, निद्रा, मय और मैथुन इन चारों बातों में तो मनुष्य पशु के समान ही है । मनुष्य में अगर कोई विशेषता है तो धर्म की है । जिस मनुष्य में धर्म नहीं है वह पशु के समान है ।

मनसूच यह है कि इस कवि ने मनुष्यत्व का विद्वत् रसना है धर्म, जो मनुष्य धर्म को प्राप्त कर सका वही सच्चा मनुष्य है । धर्म का विषय बहुत गहरा और विस्तीर्ण है । उसके ऊपर तो कई स्वतंत्र लेख लिखे जा सकते हैं इसलिये धर्म के विषय में हम यहाँ अधिक कुछ न कहेंगे । परन्तु इतना तो कहना ही पड़ेगा कि धर्म का मूल सच्चाई है । 'सच्चाई' का संस्कृत पर्यायवाची शब्द है 'सम्यक्त्व' । सम्यक्त्व से ही मनुष्यत्व है और मिथ्यात्व से ही पशुत्व है, एक कवि ने सम्यक्त्व और मिथ्यात्व की महिमा को थोड़े में ही बता दिया है—

नरत्वेऽपि पशुयन्ते मिथ्याऽप्रस्तवेनसः ।

पशुत्वेऽपि नरायन्ते सम्यक्त्वव्याकृतेनसः ॥

अर्थात् जिनका चित्त मिथ्यात्व से दूषित होगया है वे मनुष्य होकर भी पशु हैं और जिनका आत्मा सम्यक्त्व से निर्मल होगया है, वे पशु होकर भी मनुष्य हैं । इससे साफ़ मान्य होना है कि मनुष्यत्व का ठेका सिर्फ मनुष्यों को प्राप्त नहीं है । और मनुष्य होने से ही मनुष्यत्व प्राप्त नहीं होता । पशुओं में भी ऐसे पशु होते हैं जिन्हें हम मनुष्य कह सकते हैं और मनुष्यों में भी ऐसे प्राणी होते हैं जिन्हें हम पशु कह सकते हैं इससे मान्य होना है कि मनुष्य होने पर भी मनुष्यत्व मिलना मुश्किल है । इसलिये उत्तराख्यपन की

में बार दुर्लभों में सबसे पादसी दुर्लभ पदु मनुष्यत्व
पठलाई गई है, यहां पर मनुष्यमय न लिखकर जो मनुष्यत्व
लिखा गया है उसने अर्थ को बहुत गम्भीर बना दिया है।
समस्त जीवन बनाने के लिये यह सबसे पादसी शक्ति है।

जो इस पादसी शक्ति को पूर्ण कर सका यह आगे की तीन
शक्तियों को भी पूर्ण कर सकेगा। सब पूछा जाय तो आगे की
तीन शक्तें, मनुष्यत्व के ही पूर्ण शिक्षण के लिये हैं।

दूसरा शक्ति है शास्त्रज्ञान। जो तो शास्त्रज्ञान होना सरल
है। इस पांच वर्ष रगड़ने रगड़ने सभी विज्ञान बन जाते हैं।
ज्ञान ज्ञान में धर्म है, विज्ञाना ज्ञाना है। परंतु सच्चा
शास्त्रज्ञान, धर्म के रहस्यों के पहिचानने की योग्यता
मुद्रिका है। जैनशास्त्र के ज्ञानवा सार इसका ही है कि "धर्म
आत्मा में है बाहर नहीं। धर्म न तो मंदिरों में है न ममजिह्वों
में, न तीर्थों में, न शेषियों में, वह तो हमारी आत्मा में है।
होना न धर्म का बाहर दुर्लभ मान लिया है। ज्ञानि और कुछ
को धर्म का देवेदार बना दिया है। वे दाह मंत्र के शरीरों में
भी कुछ कुछ का दिक्कर करते हैं वही तो मिथ्याज्ञान है।
मिथ्याज्ञानों की शिक्षण करने पर भी जिनके आगे आत्मा की
ज्ञान की न पहिचान, शरीर की मुद्रिका कद्रिका के पीछे ही रहा
रहा वह शिक्षण ही शिक्षण बनने के ही तो की मनुष्यत्व की नहीं
बनता न बनता।

जैनशास्त्रों के सार से पूर्ण शिक्षण दाह है कि वह शरीरों
शिक्षणों में धर्म का पहिचान नहीं आता, जिनके इसकी
हम मनुष्य की शक्ति सुधारण शक्तों का सार पहिचान। शास्त्र

देना नहीं देता । यदि कहता है कि आत्मा को यदि चाहे और जो कुछ कर सकते हो करो । यह स्वयं में भी नहीं विचारते कि मुझे इस बात का अधिकार है या नहीं । मुन्द से मुन्द, नीच से नीच प्रार्थी को धर्म पातन करने का अनन्त अधिकार है । जो उन अनन्त अधिकारों और आत्मा की अनन्त शक्ति में विश्वास रखता है वही सच्चा धर्मानु है ।

चौथी दुर्लभ वस्तु है संयमरत्न । संसार में यह पदार्थ सबसे अधिक दुर्लभ है परन्तु जितना ही अधिक दुर्लभ है लोगों ने इसे उतना ही अधिक गिनबाड़ ही बस्तु बना रक्खा है । जिन लोगों में मनुष्यत्व नहीं, जान नहीं, धन्दा नहीं, ये संयमी बनने की डोंग हांकते हैं । संयम की जैसी मिट्टी पर्याप्त हुई है वैसी किसी की नहीं हुई है ।

संयम के गाँव साधनों को संयम समझना सब से बड़ी भूल है । उपवास, रत्नत्याग, अनेक तरह के वेद, स्त्री पुरुषों का त्याग आदि संयम के साधन हो सकते हैं परन्तु ये स्वयं संयम नहीं हैं । फिर संयम क्या है और संयमी कौन है ?

संयम है मनको वशमें रखना । कपायों को दूर रखना । जो मनुष्य हमारा बड़ा से बड़ा अनिष्ट कर रहा हो उस पर भी जिसमें शोध नहीं आता, जिसमें अपनी विद्वत्ता तथा श्रद्धा का घमण्ड नहीं है, जो अपनी पूज्यता का भी घमण्ड नहीं करता, जो पशु का भिखारी नहीं है, जिसके हृदय में ईर्ष्या नहीं है, जो दूसरे के पशु को सह सकता है, जो घृष्ट का शत्रु हो, विश्वमेव ही जिसकी रागवृत्ति है, जो घृष्ट कपट से दूर है, जिसने पड़ी से बड़ी श्रद्धा को निंदी के समान समझा है, जो

बदामता का भंडार है, पापियों को देखकर जो चुन्ना न करके दया करता है, विरोधी के साथ भी जो मित्र बैठा बना करता है । जो गहनशीलता का घर है, बड़ी संयमी है, बड़ी साधु है । बड़ी जगत् के लिये प्रातःस्मरणीय है । गर्नु ऐसा संयम मिलता मुश्किल है । तपस्या का भोग पाप्य करने वाले (साधु) भारत में करीब ६० लाख व्यक्ति हैं उनमें ऐसे दिनने हैं जिनकी कपायें पत्नी में सीधी गई लकीर के समान शीघ्र ही निमीन होजाती हैं । जिनमें लच्छा ल्याग और लच्छी उपासीनता हो । ऐसे व्यक्ति अगुलियों पर लड़ी तो अगुलियों के गोरी पर लहर गिने जा सकते हैं । (निलिने उलगाथयन में लयम को पुनर्भ कहा है ।

इन बात दुर्भम वस्तुचा हैं । आ वा लच्छा है उमीछा होयन लच्छा है । १०

(अंतःप्रकाश)

० इस लेख के लेखक करने के लिये जिन वस्तुओं व दृष्टियों व करने अनुसंधान की है, उनके लिये हम बहुत धन व शक्ति है ।

— अन्तःप्रकाश —



आदर्श जैन

[धा० चा० मो० ग्राह]

“जन” वह साधारण मनुष्य ।

दो मात्रा^१ बढ़ा हुआ वह “जैन” ।

ज्ञान और क्रिया का दो मात्रा (पांखे) ।

दो पांखों से ऊँचा चढ़कर,

जगत का निरीक्षण करे वह जन ।

जीतने की अभिलाषा वाला वह जैन ।

विजय लक्ष्मी से बरा हुआ वह जैन ।

भूमण्डल की विभूति जैन महासागर को बरती है ।

त्रिलोक को नापे सो जैन ।

निज के दोषों को जीते सो जैन ।

जगत् मात्र का भला चाहा करे वह जैन ।

जैन के हृदय में, कार्य में क्रोध की वामना न हो ।

शान्ति की तरंगें उछलती रहें ।

जैनी मेरा, यह सत्य नहीं; परन्तु सत्य सो मेरा ।

जैन कभी कायर नहीं होता ।

शूर वीरता और धीरता धारे सो जैन ।

विलास को विष माने सो जैन ।

उत्साह में ऊँचा उछले सो जैन ।

जगत् मात्र को अपना माने सो जैन ।

शरीर और आत्मा को भिन्न समझे सो जैन ।

जगत् को नाचता देखे सो जैन ।

सर्वथा स्वतंत्र हो सो जैन ।

शरीर और मन पर राज्य करे सो जैन

जगत् जिसके वशीभूत होवे वह जैन ।

आदर्श जैन

[धी० वा० मो० गाढ़]

“जन” वह साधारण मनुष्य ।

दो मात्रा^१ बढ़ा हुआ वह “जैन” ।

ज्ञान और क्रिया को दो मात्रा (पाँचे) ।

दो पाँचों से ऊँचा चढ़कर,

जगत का निरीक्षण करे वह जन ।

जीतने की अभिलाषा वाला वह जैन ।

विजय लक्ष्मी से बरा हुआ वह जैन ।

भूमण्डल की विभूति जैन महामागर को चरती है ।

त्रिलोक को नापे सो जैन ।

निज के दोषों को जीते सो जैन ।

जगत् मात्र का भला ब्याहा करे वह जैन ।

जैन के हृदय में, कार्य में क्रोध को वासना न हो ।

शान्ति की तरंगें उछलती रहें ।

जैनों मेरा, यह सत्य नहीं; परन्तु सत्य मो मेरा ।

जैन कभी कायर नहीं होता ।

शूर वीरता और धीरता धारे मो जैन ।

विलास को विष माने सो जैन ।

उत्साह में ऊँचा उछले सो जैन ।

जगत् मात्र को छपना माने सो जैन ।

शरीर और आत्मा को भिन्न समझे सो जैन ।

जगत् को नाचता देखे सो जैन ।

नर्बधा स्वतंत्र हो सो जैन ।

शरीर और मन पर राज्य करे मो जैन ।

जगत् जिसके कशीभूत होवे वह जैन ।